प्रभात

सितम्बर १९६१

सम्पादक :—
आचार्य सुग्रीवानन्द,
ब्रह्मचर्याश्रम श्री बाबा रुद्रानन्द
गांव नारी, डा. घ. चलोला (होशियारपुर)
वार्षिक मूल्य : ५) रु. इस अङ्क का : ५० न.पै.

W 10.2

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस अङ्क में पढ़िए

वैदिक राष्ट्रगीत—
अनु., प्रो. राजनाथ पाण्डेय एम. ए. १

वेदान्त की आवश्यकता—
आचार्य श्री सुग्रीवानन्द जी महाराज २

गायत्री मन्त्र की उपासना—
श्री स्वामी हरिदास जी ४

कर्म-विचार—
श्री योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण' ५

धरती का देवता (एकाङ्की)—
डॉ. रामचरण महेन्द्र एम. ए., पीएँच. डी. ७

अवतारवाद की धारणा—
श्री मदनमोहनलाल शर्मा हिन्दी प्रभाकर १५

धी-श्री-स्त्रीम्—
प्रा. सत्यभूषण वेदालंकार १६

मासिक द्वादश राशिफल—
पं. यशोदानन्द 'उनियाल' राजज्योतिषी १७

...और चेतन—
वैद्य गण्डाराम शास्त्री १८

काव्य की परीक्षा—
श्री नरेशचन्द्र मिश्र २०

अनमोल वचन— २२

पाप और पुण्य—
प्रो. जगदीश मित्र एम. ए. २३

परवरदिगार से आरजू (कविता)— २४

जगत्, जीव और ब्रह्म—
सर्वतन्त्रस्वतन्त्र विद्यामार्तण्ड प्रो. माधवाचार्य २५

उपालम्भ—
श्री ब्रह्मस्वरूप शर्मा २६

देवालय : सॉनेट—
अनुवादक—श्री ध्रुव कपूर २६

संस्कृत-जगत्—

पुराण-रत्नानि— ३१

आश्रम-समाचार— ३२

आवश्यक जानकारी

★"अमर विभूति" प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित होती है।

★वार्षिक शुल्क पांच रुपए है, और साधारण एक प्रति का मूल्य पचास नये पैसे है।

★जिन ग्राहक महानुभावों ने हमारे पास अपने पते लिखवाए हैं यदि उन्हें पत्रिका किसी कारण न मिल सके तो वे हमें सूचना अवश्य दें।

★"अमर विभूति" पत्रिका-परिवार का जीवन-सदस्यता-शुल्क १२५) रु० है।

★लेखक महानुभावों से निवेदन है कि वे उत्तर या रचना की वापसी के लिए टिकट न भेजा करें।

★"अमर विभूति" में वही विज्ञापन छप सकते हैं जो कि उद्योग, कृषि, स्वास्थ्य एवं राष्ट्रीय समृद्धि ... नवनिर्माण सम्बन्धी हों।

★पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक ... लिखना न भूलिए।

संचालक तथा सम्पादक

ब्र० श्री सुग्रीवानन्द वेदान्ताचार्य (वाराणसी) शास्त्री, हिन्दी प्रभाकर (पंजाब) विद्यालंकार
आचार्यः—ब्रह्मचर्याश्रम अमर योगी श्री बाबा रुद्रानन्द जी महाराज।

प्रबन्ध-सम्पादक

सत्यभूषण बख़्शी साहित्य शास्त्री

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eG...

अमर विभूति

विभूतिरस्तु सूनृता । (ऋग्)

वर्ष : १ } आश्विन, २०१८; सितम्बर, १९६१ { अङ्क : ६

##卐 वैदिक-राष्ट्रगीत 卐

ओं यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोस्तु वर्षमेदसे ॥
(अ १२, १, ४२)

भाषा

जिसमें सुन्दर अन्न, धान, जौ, भोजन-हित सम्भूत हुए
पंचजाति के कृषक मनुज-कुल हैं जिसमें सम्भूत हुए ।
रोम रोम वर्षा-जल से हो पुलकित जिसके हैं रहते
उस पृथ्वी पर्जन्य प्रिय का हम अभिवादन हैं करते ॥

अनुवादक—
प्रो. राजनाथ पाण्डेय, एम. ए.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेदान्त की आवश्यकता

[आचार्य सुग्रीवानन्द]

समस्त विश्व के साहित्य में दो शब्द विशेष स्थान रखते हैं, उनका सम्मान भी उतना ही है जितना वह शब्द के द्वारा बोध्य होते हैं। यथा—ज्ञान और विज्ञान। ज्ञान का सामान्य अर्थ है किसी भी वस्तु के यथार्थ स्वरूप की पहचान। विज्ञान का सामान्य अर्थ है अनुभवात्मक ज्ञान। किसी वस्तु के जान लेने से मानव का व्यावहारिक मार्ग खुल जाता है, वह यह वस्तु है। इसका इस तरह प्रयोग है। इसका यह लाभ है। यह विधि, यह समय है। ये सब काम ज्ञान के ही हैं। विज्ञान मानव को सांसारिक सम्पूर्ण सुखों में, ऐश्वर्य में, वासनाओं में, ग्रहण में, आसक्ति में, पूर्ण रूपेण सहयोग देता है। संसार के सभी सुख जो कि शान्त हैं वे सब-के-सब विज्ञान से ही आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं। उदाहरणतया—हमारे खाने, पीने, पहनने, यातायात, रोग-निवृत्ति आदि के साधन सब-के-सब विज्ञानजन्य हैं परं च विज्ञानजन्य सुख विनाशवान् अस्थायी दुःख-मूल, अशान्ति का घर माना जाता है। क्योंकि मानव मात्र की प्यास इन सबसे बुझाई नहीं जाती। यह सुख मनुष्य को घोर नरक आदि लोकों में ले जाने का ही साधन हो सकता है। सार्वभौमिक आत्मशान्ति का उपाय यह नहीं हो सकता। उसका उपाय केवल मात्र ज्ञान ही है। ज्ञान में भी जगत्, जीव, जगदीश्वर के विवेचनोपरान्त आत्मिक ज्ञान ही मानव को सच्चा सुख, अलौकिक शक्ति, ब्रह्मानन्द का दान दे सकता है। यथा—

> भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
> क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् ज्ञाते परावरे॥

इस एक परम तत्त्व के जान लेने के बाद सब-का-सब स्वयं ही जाना जाता है। उसके दर्शन से हृदय की ग्रन्थिएँ खुल जाती हैं। जन्मान्तरीय शुभाशुभ कर्मों के द्वारा पड़े हुए संशय कट जाते हैं। उस जीव के संचित कर्म जल जाते हैं। 'तस्मिन् ज्ञाते सर्वं ज्ञातं भवति' यही ज्ञान अनन्त तथा सम्पूर्ण है। इसी ज्ञान के द्वारा आत्मा की उपलब्धि होती है। इसी ब्रह्म-ज्ञान के द्वारा जीव स्वयं प्रभु बन बैठता है। इस ज्ञान का मूल स्रोत सरल साधन केवलमात्र वेदान्त ही है। वेदान्त एक ऐसा ज्ञान माना जाता है, जोकि सर्वोत्कृष्ट सर्वप्रथम सर्वस्वरूप है। वेदान्त ज्ञान के द्वारा मनुष्य स्वयं ही सर्व हो जाता है। वेदान्त का सामान्य अर्थ है सांसारिक सामाजिक व्यवहारिक आर्थिक राजनैतिक सभी ज्ञानों के बाद का ज्ञान। अर्थात् अन्तिम ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान, क्योंकि वेदों के प्रतिपाद्य विषय दो ही माने जाते हैं। एक प्रवृत्ति-मार्ग, दूसरा निवृत्ति-मार्ग। एक के प्रधान मरीचि आदि ऋषि हैं। दूसरे निवृत्ति-मार्ग के प्रधान सनकादि हैं। प्रवृत्ति-मार्ग के बाद निवृत्ति-मार्ग का प्रारम्भ होता है जिसे वेदों में उपनिषद् भाग कहते हैं। इसी निवृत्ति-मार्ग का नाम दर्शनों में वेदान्त माना गया है। वेदान्त आपका नाता समस्त संसार से नहीं छुड़ाता है। वेदान्त विश्वप्रेम का दमन नहीं करता, वेदान्त किसी के सुखों को पीस नहीं डालना चाहता, वेदान्त मानव के रंगीन तथा विकसित हृदय को नीरस नहीं कर देना चाहता। वेदान्त मनुष्य मात्र को शून्य, उदासीन, आलसी, पराक्रमहीन नहीं कर देना चाहता। वेदान्त तो संसार की कर्म-जाल द्वारा बनी हुई भट्टी में जल कर राख बने हुओं को पुनः सजीवन, समृद्ध, जागृत और अमृत कर देने के लिए अमृत है। उसके आश्रय को पाकर जीव स्वयं आश्रयता को प्राप्त हो जाता है। वेदान्त त्याग सिखाता है, आलस्य को दूर भगाता है। वेदान्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

... महौषध है। ... का अनुभव मानवमात्र ... तब पड़ता है, जबकि वह-कर्म जाल के भाव को समझ नहीं पाता। क्योंकि मनुष्य बिना कर्म किए एक क्षण भी ठहर नहीं सकता। किए कर्म का नाश बिना फल भोगे हो नहीं सकता। तो यह कर्म-जाल का क्रम किसी भी विधि पीडित व्यक्ति का पीछा नहीं छोड़ता। तब व्यक्ति को केवलमात्र एक शरण वेदान्त ही रह जाता है। वेदान्तजन्य ज्ञानाग्नि ही व्यक्ति को कर्म-जाल से छुटकारा दिला सकती है।

यथा—'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा'

यह ज्ञान वेदान्त द्वारा ही सम्भव है। वेदान्त इस भवरोग का महौषध है। जब कर्मजाल-ताडित व्यक्ति अपने पुत्र, कलत्र, भवन, भूमि, सम्पत्ति से ऊब उठता है तब उस निराश, निराशय, निर्मूल, निःपथ, व्यथितचित्त जीव को वेदान्त एक ऐसे सीधे सरल सुगम पथ के द्वारा एक ऐसे सच्चे सुख की ओर प्रेरित कर देता है कि जहां पर जाकर वह मनुष्य फिर कभी भी दुःख की आंच से नहीं झुलसता है। वेदान्त व्यक्ति को संकीर्ण तथा संकुचित विचारों से ऊपर उठा देता है। इसका उद्देश्य संसार की किसी भी वस्तु पर व्यक्ति का अनधिकार बनाना है। कोई भी अनित्य वस्तु उसकी अपनी नहीं है, विश्व उसका अपना नहीं है, संसार की प्रत्येक वस्तु पर उसका अपना अधिकार नहीं है। यहां तक कि उसका यह शरीर भी अपना नहीं है। वेदान्त दर्शन का उद्देश्य सम्पूर्ण संसार में मनुष्य मात्र को यह मानसिक अनुभूति करा देना है कि—उपस्थित सम्पत्ति, वैभव, राज्य, भूमि, भवन यहाँ तक कि स्वत्व पर भी तेरा अपना कोई अधिकार नहीं है। दर्शन कहता है कि अधिकार का भाव ही एक बड़ा भारी असत्य है। वेदान्तदर्शन का वास्तविक स्वरूप है—'वसुधैव कुटुम्बकम्'। आज के अनेक-वाद-पूर्ण भयंकर काल म जली जा रही अबोध जनता को एक ऐसे साधन की आवश्यकता है जिसके द्वारा मानव अपनें वास्तविक स्वरूप को पहचान कर, ठण्डे दिल से सच्चे सुख की प्राप्ति करके ध्रुवा शान्ति को प्राप्त हो सके। वेदान्तदर्शन ही एक ऐसा दर्शन है जो कि साम्य की सुशिक्षा देता है। इस दर्शन के बिना ताप-त्रय का मूलोन्मूलन कभी भी संभव नहीं, वेदान्त के आश्रय, प्रचार तथा प्रसार के बिना सूर्य के नीचे इस पृथ्वी पर सच्चा सुख तथा स्वयंप्रकाशता लाखों युगों तक नहीं आ सकती। वेदान्त के अनुसार मनुष्य सम्पत्ति और अधिकार, लगाव तथा आसक्ति के समस्त भावों को त्याग दे। क्योंकि—

'त्यागे सम्भवः सर्वसुखानां ग्रहणे च सर्वसुखवियोगः'

त्याग सुख का मूल और ग्रहण दुःख का कारण है।

यह ज्ञान ही व्यक्ति को व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाता है। यह दर्शन किसी के व्यक्तिगत सम्पत्ति-अधिकार को अपनी आत्मा या आन्तरिक स्वत्व के विरुद्ध बहुत बड़ा पापाचार अथवा अपवित्र भाव मानता है। आज की भूख को मिटाने का, आज के सम्पत्तिवाद का, कलावाद, अशान्तिवाद का, सम्प्रदायवाद, संस्थावाद इन सबका केवलमात्र अलौकिक साधन वेदान्त है। नीर-क्षीर का ज्ञान भी इसी से सम्भव है। वेदान्त चाहता है कि—हम इस सत्य तक पहुँच जाएँ कि त्याग में ही सब सुख सन्निहित हैं; लेने अथवा याचना करने में कभी भी नहीं। इस दर्शन के द्वारा समाज का सम्पूर्ण संघटन किया जा सकता है। भारत के प्राचीन ऋषि-महर्षि तथा आधुनिक साधु-सन्त यह सब प्रागैतिहासिक युग से ही ऐसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वह स्वयं एक बड़ा कठोर परिश्रम कर चुके हैं तथा कर रहे हैं। वे आलसी, आराम-पसन्द, विलासी व्यक्ति नहीं थे। उन ही महान् पुरुष वेदान्त-वादियों के द्वारा भारत के महान् तथा सम्पूर्ण साहित्य की उत्पत्ति हुई है। यही लोग सर्वश्रेष्ठ कवि, नाटककार, वैज्ञानिक, दार्शनिक, वैयाकरण, गणितज्ञ, ज्योतिविज्ञ, रसायनशास्त्री तथा आयुर्वेदज्ञ हुए हैं। इन्हीं लोगों ने अपने जीवन में

[शेष पृष्ठ ६ पर]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गायत्री मंत्र की उपासना

[ले० — स्वामी हरिदास जी]

गायत्री मन्त्र को चारों वेदों तथा भारतीय संस्कृति का उद्गम कहा है। उसके २४ अक्षरों में इतनी महत्त्वपूर्ण शिक्षाएं भरी हैं कि उन्हें समस्त ग्रन्थों का सार एवं सार का सबसे छोटा, किन्तु सबसे सारगर्भित धर्मशास्त्र कह सकते हैं। गायत्री-उपासना अन्य सभी उपासनाओं की अपेक्षा अधिक सरल, स्वल्प एवं अत्यधिक फलदायिनी है। प्राचीन काल में ऋषि-मुनि इसी महामन्त्र के आधार पर तपस्याएँ करके परम सिद्धि प्राप्त करते थे। सर्वसाधारण के लिए गायत्रीहीन की कटु शब्दों में शास्त्रकारों ने भारी निन्दा की है। आध्यात्मिक उन्नति और सांस्कृतिक कठिनाइयों को सरल बनाने में सद्बुद्धि का यह महामन्त्र (गायत्री) एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माध्यम माना गया है। भारतीय धर्म की सर्वोत्कृष्ट ईश्वर-उपासना गायत्री मन्त्र द्वारा ही सम्भव है, गायत्री मन्त्र का सामान्यार्थ आप जानते होंगे। "गायन्तं त्रायते" इसका जो भी व्यक्ति गायन करता है यह गायत्री उसका त्राण करती है, अर्थात् जो व्यक्ति इस गायत्री मन्त्र का यथा-विधि, जप अनुष्ठान, उपासना करता है उसे यह गायत्री इस भवजाल के दुःख से बचाकर ब्रह्मरूप बना देती है। गायत्री मन्त्र द्वारा केवल अष्टसिद्धि की ही प्राप्ति नहीं होती, गायत्री तो वेदों का सार है। इस मन्त्र में परब्रह्म से यही प्रार्थना की गई है कि—"धियो यो नः प्रचोदयात्" हमारी बुद्धियों को उच्चतम कार्यों के लिए प्रेरित करें। क्योंकि उच्च बुद्धिएँ ही व्यक्तियों को उस परमपवित्र मार्ग पर चलाकर चरम लक्ष्य पर पहुंचा देती हैं। लिखा भी है—

> इन्द्रियाणि पराण्याहुः इन्द्रियेभ्यः परं मनः।
> मनसस्तु परा बुद्धिः यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

बुद्धि के आगे यदि किसी का स्थान अथवा अधिकार माना जाता है तो केवल उस परमात्मा का ही हो सकेगा। गायत्री मन्त्र बुद्धियों को यथायोग्य बना कर ईश्वर- प्राप्ति के योग्य बना डालता है—इस मन्त्र की उपासना साक्षात्पर ब्रह्म की उपासना है। इसकी उपासना में पवित्रता तथा आचार का अत्यधिक ध्यान रखना पड़ता है। इसकी पुरश्चरण विधिएं व्यक्ति की सुविधाएं बिखेरती हैं। इसका तप इतना विशाल है कि—एक समय जरत्कारु ऋषि ने अपने तपोबल से अक्षुण्ण तेजपुञ्ज अप्रतिहतगति भगवान् सूर्य को अपनी पत्नी के सामने, उसके अज्ञान को दूर करने के लिए, गायत्री मन्त्र की उपासना का बल दिखाकर स्थिर कर दिया था। सूर्य को अपना रथ रोक कर उसका अर्घ्य स्वीकार करके ही आगे जाना पड़ा था। यह इसकी महत्ता है। इसके उपासक बनने के लिए सर्वप्रथम त्यागी सदाचारी संयमी उपवीती बाह्य तथा भीतरी पवित्रता सम्पन्न बनना पड़ता है। आज इसकी उपासना के त्यागने से विश्व में नाना प्रकार के प्राकृतिक कोप हो रहे हैं। आज भी यदि यथाविधि माता गायत्री की उपासना की जाय तो भारत विवेक-सागर बन सकेगा।

———

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्म-विचार

[श्री योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण']

सभी दर्शनों में 'कर्म' का विचार किया है। वस्तुतः 'कर्म' मानव-जीवन एवं दर्शन का महत्त्व-पूर्ण अंग है। विश्व के अणु-परमांणु आदि सब में 'रजोगुण' रहता ही है! 'रजोगुण' का स्वभाव है 'क्रियाशील' होना, अतः प्रत्येक वस्तु में किसी-न-किसी रूप में 'क्रिया' अवश्य रहता है। गीता में कहा गया है—

"न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥"

अतएव प्रत्येक प्राणी को कर्म करना ही पड़ता है। 'योग शास्त्र' में तो इसका स्थान बहुत ऊँचा है। परमलक्ष्य की प्राप्ति का एक-मात्र साधन यही है। 'कर्म' करने पर ही चित्त में 'संस्कार' अर्थात् 'कर्माशय' उत्पन्न होता है और वही 'वासना' को उत्पन्न करता है और उसी 'वासना' के अनुसार जीव की उत्पत्ति एवं संसार में उसके 'कर्म' होते हैं। यह 'कर्मचक्र' अबाध है। 'कर्म' की गति अनादि है। 'अविद्या' अनादि है और इसी के कारण 'कर्म' की उत्पत्ति होती है।

'कर्म' चार प्रकार का होता है—'कृष्ण', 'शुक्ल-कृष्ण', 'शुक्ल' तथा 'अशुक्ल-अकृष्ण'। दुर्जनों के कर्म 'कृष्ण' होते हैं। बाह्य साधनों से उत्पन्न 'शुक्ल-कृष्ण' कर्म सामान्य व्यक्तियों के होते हैं। तपस्या, स्वाध्याय तथा ध्यान में निरत व्यक्तियों के 'कर्म' केवल मन के अधीन होते हैं, अतः उन्हें बाह्य-साधनों की अपेक्षा नहीं रहती; ये 'शुक्ल कर्म' होते हैं।

'योगी' केवल उन्हीं कर्मों को करते हैं, जिन से उनकी मनोवृत्तियां निरुद्ध हो सकें। अतएव उनके चित में विद्यमान 'पुण्य' और 'पाप' के संस्कार भी निवृत्त हो जाते हैं। 'पाप कर्म' तो वे करते ही नहीं, साथ ही 'पुण्य-कर्मों' के फल की प्राप्ति में उनका मन नहीं रहता। उनके कर्म 'अशुक्ल-अकृष्ण' हैं। 'कर्म-फल' की इच्छा न रहने से 'अशुक्ल' तथा निषिद्ध कर्म न करने से 'अकृष्ण' योगियों के कर्म होते हैं।

सामान्य व्यक्तियों के 'कर्म' प्रथम तीन प्रकार के होते हैं। इनसे इन्हीं के अनुकूल 'वासनाएँ' भी उत्पन्न होती हैं। 'दिव्य कर्म' करने से 'दिव्य-वासना' उत्पन्न होती है। मानुषिक कर्मों से उत्पन्न वासनाओं के फलों के भोग के समय में 'दिव्य-कर्म' के फलों का कभी भी भोग नहीं होता। इसी प्रकार नारकीय एवं तैर्यक् वासनाओं के लिए भी उपर्युक्त नियम ही है।

वासनाओं की लीला भी अत्यन्त नियन्त्रित एवं विचित्र होती है। विना वासना के, उसके फल-भोग भी नहीं होते। देश एवं काल इस नियम में बाधक नहीं बन पाते। कोई भी कर्म-फल आकस्मिक नहीं होता। मृत्यु के उपरान्त वासनाओं के अनुसार ही प्राणी का पुनर्जन्म होता है।

मान लिया—एक जीव पहले मनुष्य था; मृत्यु के पश्चात् वह पशु-योनि में उत्पन्न होने जा रहा है; इसका आशय यही है कि उक्त व्यक्ति ने पूर्व जन्म में पशु-योनि के उचित कर्म किए थे, फल स्वरूप उसको पाशविक वासनाएँ उसके चित्त में विद्यमान रही थीं। वासनाएँ अनादि काल से चली आती है। ये वासनाएँ हेतु, फल, आश्रय तथा आलम्बन के द्वारा स्थिर रहती हैं और इनके न रहने पर, अर्थात् नष्ट होने पर, नहीं रहतीं। जैसे—

हेतुः—धर्म से सुख, अधर्म से कष्ट, सुख से राग एवं कष्ट से द्वेष, इन दोनों से 'प्रयत्न',

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिसके कारण मन, वचन एवं शरीर में चेष्टाएँ होती हैं, जिनके द्वारा जीव किसी को अनुगृहीत करता है, या पीडा पहुंचाता है। इससे धर्म तथा अधर्म, सुख तथा दुःख, राग तथा द्वेष उत्पन्न होते हैं। इसी क्रम से इन छः धर्म आदि 'शलाकाओं' के सहारे यह 'संसार-चक्र' गतिमान् रहता है। यह संसार-चक्र ही वासनाओं का 'हेतु' है। प्रतिक्षण क्रियाशील, इस चक्र की नेत्री है—'अविद्या', जो सभी क्लेशों की मूल होने से, वासनाओं की वास्तविक 'हेतु' है।

फलः—जिसको आश्रय मान कर उपर्युक्त धर्म आदि की विद्यमानता हो, वही 'फल' है। सत्कार्यवादानुसार, कार्यरूप फल, कारणरूप वासना में रहता ही है।

आश्रयः—साधिकार मन, वासनाओं का 'आश्रय' है। अधिकार से च्युत, निराश्रय होकर, रहने वाले मन में वासना नहीं रह सकती।

आलम्बन—अभिमुख में प्राप्त वस्तु जिस वासना को उत्पन्न करे, वही उसका आलम्बन माना जाता है [illegible] वासना की उत्पत्ति है।

यह संकेत किया जा चुका है कि 'कर्म' [illegible] पर 'कर्म-संस्कार' अथवा 'कर्माशय' उत्पन्न होता है। ये संस्कार पुण्यात्मक अथवा पापात्मक हो सकते हैं तथा इन को काम, लोभ, मोह तथा क्रोध से उत्पन्न माना जाता है। ये पुनः 'दृष्ट जन्मवेदनीय' तथा अदृष्ट जन्मवेदनीय' हैं। इनमें तीव्र वैराग्य से की गई तपस्या, मंत्र जप तथा समाधि के द्वारा अथवा ईश्वर, देवता महर्षि एवं महानुभावों की आराधना से उत्पन्न 'कर्माशय' पुण्यात्मक होते हैं। ये सद्यः फलदायक हैं। इसी भांति तीव्र अविद्या आदि क्लेशों से भयभीत, व्याधिग्रस्त, दीन, शरणागत एवं महानुभावों के प्रति अपकार करने से पापात्मक 'कर्माशय' उत्पन्न होते हैं। ये भी सद्यः फलदायक ही हैं।

नारकीयों का 'दृष्टजन्मवेदनीय' कर्माशय नहीं होता और जीवन्मुक्तों का "अदृष्टजन्मवेदनीय' कर्माशय नहीं होता।

[३ पृष्ठ का शेष]

माया का सम्पर्क न करके वेदान्त की छाया में बैठकर कठोरतम विधियों द्वारा जीवन-यात्रा को सफल किया है। हमें स्मरण रखना चाहिए, वेदान्तदर्शन आचार-विचार, आहार-व्यवहार का पूर्ण ध्यान रखता है। उसमें उच्छृंखलता का भान हम लोगों को कभी नहीं करना चाहिए। वेदान्त सुख-दुःख-मूलभूत, इस असार संसार का सार ग्रहण कर सकता है। वेदान्त हमें गाए आदि पशुओं की तरह कालोपयोगी न्याय-संगत असामयिक वासनारहित करने का यत्न करता है। यदि हम इसी प्रकार का आचरण करें तो सभी सुख-दुःख-मूल सकाम कामनाओं का अन्त हो सकता है। वेदान्त की आवश्यकता अनीश्वरत्व, अदैवत्व और मरणत्व से ईश्वरत्व, दैवत्व अमरणत्व को पाने के लिए है। वेदान्त से असम्पूर्णता में सम्पूर्णता आती है। सम्पूर्णता के बिना निरतिशय सुख का होना सम्भव नहीं। अनेकता में एकता का विधान, नीचता से उच्चता, अप्रभुता से प्रभुता, अहंता से निरहंता की ओर भगवान् वेदव्यास द्वारा निर्दिष्ट पथ वेदान्तदर्शन ही ले जा सकता है।

विश्व-साहित्य में वेदान्त-दर्शन ही एक ऐसा दर्शन है जो कि मानव की जन्म-जन्मान्तरीय भूख-प्यास अतृप्ति, अशान्ति सुख-दुःखमूल-भ्रान्ति का नाश करता है। आज तापत्रय से पीडित पथविचलित समस्त संसार का एकमात्र आश्रय वेदान्त है। भारत आदि देशों का भव्य-भविष्य वेदान्त-दर्शन पर ही आधारित है। अतः हम सबको इसका प्रचार तथा प्रसार करना होगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धरती का देवता

[डा. रामचरण महेन्द्र]

[स्थान—राजस्थान का एक वीहड़ जंगल। कुछ पहाड़ियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। घने वृक्षों के नीचे घास-फूंस की एक पर्णकुटी बनी हुई है। उसी में मेवाड़ का सीसोदिया परिवार स्वाधीनता-भवानी का भक्त महाराणा प्रताप तथा उनका परिवार शरण ले रहा है। हल्दी-घाटी के भीषण युद्ध के उपरान्त भी महाराणा प्रताप सदा स्वाधीन रह कर यवनों को मार भगाने की चेष्टा करते रहे। पराधीन रहने के स्थान पर असंख्य कष्टों और प्रतिकूलताओं में रह कर आजादी की लड़ाई लड़ने में ही सदा उन्होंने आत्मगौरव का अनुभव किया है। विधर्मियों के सामने उनका मस्तक कभी न झुका, न कभी साहस डिगा। केवल एक बार उनके जीवन में भावनाओं का एक तूफान आया······]

पात्र—महाराणा प्रताप।
महारानी।
राजकुमार तथा राजकुमारी।

———०———

महाराणा प्रताप—(हताश और दुःखी स्वर में) स्वाधीनता देवि! तुम्हारी साधना भी कितनी कठोर है······लोहे के चने हैं······याद आता है हल्दीघाटी का वह विकट युद्ध······मानसिंह ने अपमान का वदला आखिर चुका ही लिया······ईश्वर की इच्छा······पर स्वाधीनता भवानी, क्या तुम्हारा यही न्याय है? जो व्यक्ति आजादी की लड़ाई लड़ता रहे, क्या उसके भाग्य में यही लिखा है कि वह जंगल-जंगल की खाक छानता रहे······अथवा घर-बार छोड़कर दुर्गम पहाड़ों और वियाबान जंगलों में हिंस्र पशुओं से निरन्तर संघर्ष करता रहे······रोटी और वस्त्र तक के लिए तरसता रहे······उसकी महारानी और सन्तान झोंपड़ियों में विपत्तियों का जीवन व्यतीत करते रहें······एक युग था जब हमारा भी राज्य था······हम आजाद थे ···हमें समस्त राजपूत राज्यों में मुकुटमणि समझा जाता था······हमारे यशोगान से भाट-चारणों की वाणी गूंजती रहती थी······आराम की प्रत्येक वस्तु आज्ञा देते ही उपस्थित हो जाती थी, रहने के लिए सुसज्जित राजमहल और सेवा को अनेक दास-दासियाँ और नाना प्रकार की सामग्री थी······राजकुमार और राजकुमारी के लिए फूलों की सेज थी। हर प्रकार का आराम था। सुख चैन से जिन्दगी बीत रही थी। चिन्ता कभी भी पास न फटकने पाती थी······अभाव का नाम-निशान तक न था। जीवन उस रंग-बिरंगे फूल की तरह था, जो हवा के झोकों में मस्ती और आनन्द से झूमता हैं, जिस पर भ्रमर मंडरा कर मधुर नृत्य करता और सुरीले गीत गाता है। मेरे पुत्र-पुत्री का भविष्य उगते हुए लाल सूर्य की तरह उज्ज्वल था······वे इस राजस्थान प्रान्त के शासक बनते। अपनी बुद्धि और प्रतिभा से कीर्ति और प्रतिष्ठा पाते। राजपूतों की अमर परम्परा में चमकती-दमकती मणियाँ बनते······मोती-जवाहरात, जिनकी प्रसिद्धि दूर दूर तक फैलती······(फिर हताश हो जाते हैं)

······लेकिन आज क्या है? आज राणा प्रताप की कैसी दर्दनाक अवस्था है? वह दाने-दाने का मुहताज हैं······रोटी, वस्त्र, पानी, शय्या, कुटिया तक को तरसते हैं। महारानी के पास तन ढकने के लिए मुश्किल से कुछ वस्त्र रह गए हैं। वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी ठीक नहीं, राजपुत्र-पुत्री के प्राणों पर तलवार झूलती रहती है......मैं तो वृद्ध हो चुका हूँ...... मुगलों से लड़ते-लड़ते मेरी शक्ति कम हो गई है... हाथ-पाँव जवाब दे रहे हैं......बाल सफ़ेद होते जा रहे हैं. शरीर में पहले जैसी ताक़त नहीं रह गई है। पहाड़ियाँ और जंगल ही हमारा राज्य है। भील ही हमारी प्रजा है......मैं आज़ादी का दीवाना हूँ ... स्वाधीनता का कठिन व्रत लेकर मारा-मारा फिर रहा हूँ......आत्म-रक्षा के लिए मैंने अपने सुख-स्वास्थ्य, वैभव को स्वाधीनता-यज्ञ में आहुति के रूप में दे दिया है......लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि मेरे कारण महारानी और राज-सन्तान भी भटकती रहे...... प्राणों को मौत के मुँह में डाले रहे ......नहीं, यह उचित नहीं......यह अनुचित है...... एक आदमी की सनक पूरी करने के लिए असंख्य क्यों खतरे में पड़ें...... क्यों अपना सुख-समृद्धि और जीवन नष्ट करें...... फूलों की सेज पर सोने वाली सन्तान क्यों निर्जन वन में यों निराश्रित भटकती फिरे......इस सब आपत्ति का कारण मैं हूँ......केवल मैं ही हूँ......(फिर रुकते हैं) यदि मैं अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेता और मुगल शासन का एक अंग बन जाता, तो आज मेरी यों दुर्दशा क्यों होती ? राजमहिषी क्यों असह्य कष्टों को झेलतीं......निरन्तर जंगलों में बाघ, चीतों, रीछों, भेड़ियों के आतंक में रहतीं...... फटे-पुराने वस्त्रों में यों मलीन दिखाई देतीं ......इन सब की आत्माएँ मुझे धिक्कारती होंगी और कहती होंगी, यह प्रताप भी कैसा मूर्ख है, जो २५ वर्षों से शक्तिशाली मुगल साम्राज्य का सामना कर रहा है......इसके पास कोई बड़ी फौज नहीं......खज़ाने नहीं...... बड़े जागीरदारों की मित्रता की ताक़त नहीं......तोप-बन्दूक नहीं......हाथी-घोड़े और पल्टनें नहीं... चार मह[illegible] नहीं ......फिर [illegible] की छावनियों पर छापे मारता [illegible] क्यों सोये हुए सिंहों के मुँह में हाथ देता है ......क्यों बैठे बिठाये बाघ-चीतों को छेड़ता है......जिस व्यक्ति से तीन प्राणियों के लिए भोजन-सामग्री और फल-फूल आदि का प्रबन्ध नहीं होता, भला वह मुग़ल सम्राट् अकबर के विरोध में क्या सेना इकट्ठी करेगा और क्या उनकी रसद आदि का इन्तज़ाम करेगा !......मैं ही इन सब की विपत्ति का कारण हूँ। मैंने ही इनका फूल-सा जीवन मिट्टी कर दिया है ......मेरा ही सारा दोष है......मुझे अब इस विपत्ति और खतरे की ज़िन्दगी का अन्त कर देना चाहिए......अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेनी चाहिए... संधि करते ही इस कष्टप्रद जीवन का अन्त हो जाएगा...... जीवन में नया मोड़ उपस्थित हो जाएगा... बस, यही करना चाहिए ......(उद्विग्न होकर अपनी रानी को पुकारते हैं)...... महारानी ! महारानी ! !

(महारानी झोंपड़ी से निकल कर आती हैं और प्रताप को उद्विग्न देखकर चिन्तित हो जाती हैं।)

महारानी—(आश्चर्य से) आर्यपुत्र, आज आप मुझे कुछ उद्विग्न दिखाई दे रहे हैं। चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ उभर आई हैं। आपकी इस अनुचित उद्विग्नता का क्या कारण है ?

प्रताप—(उद्विग्नता से) प्रियतमे, मुझे माफ़ करो ! मेरे कारण तुम्हें बहुत कष्ट हुआ है।

महाराणा प्रताप की रानी—प्राणाधार, यह आप क्या कह रहे हैं ?

प्रताप—मैं जो कुछ कह रहा हूँ ठीक ही कह रहा हूँ। स्वाधीनता का कठिन व्रत लेकर जिन्दगी के इन पच्चीस वर्षों में मैंने तुम्हें क्या-क्या कष्ट नहीं दिये......तुम्हारे लिए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

... वस्त्र-आभूषण ... तरह की कोई साड़ी तक नहीं है। समय पर भोजन नहीं है ····· भोजन ? क्या वह भोजन होता है। घास की रोटी! कन्द, फल, फूल ! कभी आधा पेट····· तो कभी प्यासे । कभी अनाज, तो कभी अधपके फल ! बच्चों की यह हालत कि उन्हें देखा तक नहीं जाता····· जिन सुकुमार नन्हे राजघराने के बच्चों ने राजमहल से नीचे पाँव नहीं रखा था, वे ही बड़ी-बड़ी असुविधाओं और विपत्तियों का मुकाबला करते हुए जंगल-जंगल यों मारे-मारे फिर रहे हैं·····भूख-प्यास, भोजन आदि के अभाव में उनका रंग काला पड़ गया है, शरीर सूख गया है, गालों की सुर्खी ग़ायब हो गई है; कोमल बाल धूल-मिट्टी में सने रहते हैं; तन ढकने तक के लिए उनके पास पर्याप्त वस्त्र नहीं हैं······ भोजन तक का ठिकाना नहीं है······आज मिला, कल न मिला······तिस पर जीवन का अन्त कर देने वाली मुगल तलवार सारे दिन सर पर झूलती रहती है। मैंने तो स्वाधीनता के पागलपन में अपना सब कुछ नष्ट कर दिया, पर मेरी वजह से तुम लोग क्यों व्यर्थ ही यों मारे-मारे फिरते हो। अपनी जिन्दगी का नाश करते हो। आज मुझे अपनी करनी पर बड़ी आत्म-ग्लानि हो रही है, महारानी, तुम मुझे माफ़ करो!

महारानी—(धैर्य बंधाते हुए) आर्यपुत्र, आज यह आप क्या-क्या कह गए··· मन में ऐसी शंका और ग्लानि यकायक कैसे आ गई है? आज मेवाड़सूर्य पर ये चिन्ता के बादल क्यों मंडरा रहे हैं? शिथिलता तथा अनुत्साह ठीक नहीं है। मानसिक गुलामी की यह काली लहर आज महाराणा के मन में कहाँ से उदित हुई?

प्रताप—महारानी, किसी पर अत्याचार करने की भी एक मर्यादा होती है। आप लोगों ने मेरे कारण बहुत कठोर जीवन व्यतीत किया है। अब तो जंगलों-जंगलों खाक छानते-छानते राजघराने का कोई भी चिह्न अवशेष नहीं रह गया है। हाय, आज मैंने तुम्हारी यह क्या दशा कर डाली है। तुम्हारे बच्चों की कैसी जर्जर हालत है। कहाँ हैं हमारे राजमहल, कहाँ है वह ऐश्वर्य का जीवन ! और कहाँ यह दर-दर भटकने वाला मुसाफिरी जीवन। धिक्कार है मुझ जैसे पति को, जो अपनी पत्नी और बच्चों तक की देख-रेख नहीं कर पाता। तुम्हारे पिता जी भी क्या कहते होंगे कि मैंने उनकी पुत्री को क्या सुख दिया! अपना यह कलंकित मुख तक दिखाने को मेरा जी नहीं चाहता।

महारानी—प्राणाधार, ऐसे वचन मुँह से उच्चारण न करें। (इतने में राणा की पुत्री की करुण चीख सुन पड़ती है। 'माता जी, पिता जी!! बचाइये! बचाइये! का शोर सुन पड़ता है।)

महाराणा—(शंका से) यह क्या हुआ। राजकुमारी का स्वर सुन पड़ता है। क्या हुआ? क्या हुआ?

महारानी—धैर्य रखें, महाराणा, बच्चे झोंपड़ी के अन्दर शोर कर रहे हैं। मैं अभी जाकर देखती हूँ क्या बात है?

(महारानी जाती है)

महाराणा प्रताप—हाय, मेरे बच्चों का जीवन कैसा कष्टमय बीत रहा है। जहाँ इनके पास कितने ही सेवक सेवा और संरक्षा के लिए रहते थे वहाँ अब एक भी नहीं है······वे अकेले ही दिन बिता रहे हैं······ जंगल के हिंसक पशुओं से उनका जीवन भरा हुआ है······भोजन तक की व्यवस्था नहीं·····

(राजकुमार और राजकुमारी का रोते हुए प्रवेश)

राजकुमारी—(रोती हुई) पिता जी, पिता जी!

प्रताप—क्यों क्या हुआ, राजकुमारी क्यों रोती है?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजकुमारी—(रोती रहती है) ···ऊँ···ऊँ···ऊँ···ऊँ···ऊँ···

राजकुमार—मैं बताऊँ ? यह डरी हुई है ? यह नहीं बोलेगी ?

प्रताप—हाँ, हाँ, तुम ही बताओ। क्या बात है, यह क्यों चीख पड़ी थी ? अब तक क्यों रो रही है ?

राजकुमार—माता जी ने रोटी तैयार की थी। हमें आधी-आधी बाँट कर वे बाहर चली आईं। रोटी के आधे-आधे टुकड़ों का हिस्सा लगा रखा था। हम दोनों भोजन की तैयारी कर ही रहे थे कि राजकुमारी की रोटी एक जंगली बिलार ने छीन ली और रोटी बची ही नहीं······अब इसे रोटी कहाँ से दें। घास छीलने पर ही नई रोटी बनेगी······घर में फल-फूल इत्यादि भी कुछ नहीं है······यह सुबह से ही भूख-भूख चिल्ला रही थी······घर में जो घास की रोटी थी, वह भी हाथ से चली गई······ इसी से रोती है।

राजकुमारी—(रोना जारी रखते हुए) जंगली बिलार······रोटी······छीन··· ···ले··· ··· गया······बड़ी भूख······लग रही··· ···है ······माँ······माँ···ऊँ··· ऊँ··· ···भूख ! भूख ! ! ······रोटी···रोटी·····

राजकुमार—(सहानुभूति से) नहीं हिन, रो मत, रो मत, अभी तुझे रोटी दूंगा। मैं जंगल से मीठे-मीठे फल लाकर तुझे खिलाऊँगा······थोड़ी देर चुप कर जा··· ··

राजकुमारी—(रोते हुए) हम तो रोटी खाएँगे··· भूख लगी है······

प्रताप—(सुबकते हैं। नेत्रों से पानी गिरने लगता है) बेटी, रो मत ! रो मत ! ! तुझे अभी रोटी मिलेगी······

(प्यार से राजकन्या को गोद में चिपका लेते हैं और स्नेह के आँसू बहाते रहते हैं। फिर धीरे-धीरे कहते हैं)

······एक दिन था जब मैं स्वाधीनता-भवानी की आरती उतारने में गौरव समझता था···मैंने सब कुछ छोड़ा और आजाद जीवन की [illegible] की खाक छानता रहा [illegible] मेरे पोछे-पीछे कुमार अमरसिंह और [illegible] की महारानी चल पड़े···हम ने उन साधनों को नष्ट कर दिया, जिनसे मुग़ल सेनाएँ उन सामरिक वस्तुओं का उपयोग हमारे विरुद्ध न कर सकें· मेवाड़ की स्वाधीनता को जर्जर न कर सकें पच्चीस साल से मैं इधर-उधर स्वाधीनता की ज्योति जगाता, निराश, निरुत्साह राजपूतों में प्राण भरता फिरता रहा हूँ···लेकिन आज · आज मुझे अनुभव हुआ है कि स्वाधीनता का व्रत बहुत कठोर होता है मेरे इस स्वाधीनता के व्रत ने इस राजपरिवार का कैसा बुरा हाल कर दिया है···मुझे यह दृश्य देख कर लज्जा आ रही है··आत्म-ग्लानि से मैं मरा जा रहा हूँ····· स्वाधीनता-भवानी कैसा-कैसा खौफनाक बलिदान मांगती है···उफ़ ! आज मुझे विदित हुआ बेटी ! (चूम कर) बस, बस, अब मेरा ढाढस खो गया है··· अब तुम्हें दुःखी नहीं देखा जाता···अब मैं जल्दी ही अकबर से संधि कर तुम्हारे इस बनवास का अन्त कर दूँगा······माफी माँग लूँगा···जिस उत्साह से यह स्वाधीनता का व्रत आरम्भ किया था, उतनी ही घोर निराशा से यह अनुष्ठान आज समाप्त होने को है ··(प्यार करते हुए) बेटी, रोओ नहीं, मैंने अच्छी तरह विचार कर लिया है कि अकबर से संधि कर लेने में ही अब भलाई है··· ·

(राजमाता का प्रवेश। रोती हुई राजकुमारी को महाराणा प्रताप की गोदी में देख वस्तुस्थिति का अनुमान कर लेती हैं। छोटी-छोटी बातों से पति की चिन्ता बढ़ाई न जाय, इस नीयत से सान्त्वना देती हैं)

राजमाता—आर्यपुत्र, राजकुमारी के रोने पर ध्यान न दें। नई रोटी की व्यवस्था मैं अभी करूँगी।

महाराणा प्रताप—हाय ! मैं भी कैसा अभागा हूँ, जिसके बच्चे आज घास की रोटी तक के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

...इस स्वाधीनता ...का धिक्कार है, जिसने अपने सारे परिवार को दुःख के दावानल में झोंक दिया है···ऐसी आज़ादी किस काम की······

राजमाता—आर्यपुत्र, लाइये मुझे इसे अपनी गोदी से दीजिए। मैं अभी इसे चुप करा कर भोजन देती हूँ···नई रोटी तैयार करती हूँ · धैर्य धारण कीजिए·····

(प्रताप की गोद से राजकुमारी को ले लेती है)

प्रताप—हो चुका, हो चुका। मेरे स्वाधीनता-व्रत का आज अन्त हो चुका · मेरी पुत्री को घास की रोटी भी न मिले, क्या यही स्वाधीनता है·· फूलों की सेज पर सोने वाली राजसंतान इस निर्जन वन में घास की आधी रोटी के लिए बिलखती फिरे और आज़ादी का दीवाना उसका प्रतापी पिता खड़ा-खड़ा टुकुर-टुकुर देखता रहे··· क्या यही स्वाधीनता-भवानी की शर्त है? ···क्या मैंने इसी लिए मेवाड़ की पवित्र भूमि से विदा ली थी कि ये सब टुकड़े-टुकड़े के लिए यों तरसते रहें···और वह भी कब तक···एक दो नहीं, पच्चीस साल होने आए···जीवन की कमर टूट गई! हाय! जिस कलेजे पर मुगलों का फौलादी पंजा कुछ भी आघात न कर सका, वही आज इस नन्ही बालिका के करुण क्रन्दन से पिघल उठा है। मुझे अपनी स्वातन्त्र्य-भावना पर गर्व था, सीसोदिया परिवार की वीरता और कष्टसहिष्णुता का अभिमान था, लेकिन इस बालिका के दुःख ने तो मेरा सारा अभिमान, सारा आत्मगौरव, सारी प्रतिष्ठा को चूर-चूर कर दिया है···मेरे चित्तौड़! तू साक्षी है, जो हृदय हल्दीघाटी जैसे विकट युद्ध से न काँपा था, इस कन्या के रुदन और हाहाकार से वह थर-थर काँपने लगा है। अब केवल एक ही मार्ग बच गया है। प्राणेश्वरी, अब तुम लोगों का दुःख ये आँखें अधिक दिनों तक न देख सकेंगी, तुम्हारा करुण क्रन्दन ये कान अब न सुन सकेंगे··· तुम्हारी वेदना को सम्हालने की शक्ति मेरे हृदय में नहीं रह गई है····· जिन पाँवों ने राजस्थान के सैकड़ों मीलों की पहाड़ियों और जंगलों का रास्ता तय किया है, भयावह नदी-नालों को पार किया है, वह पाँव आज विचलित हो रहे हैं····· मैंने अच्छी तरह से विचार कर देख लिया है कि अकबर से सन्धि कर लेने में ही हित है·········(रो उठते हैं)

(वायुमण्डल में शान्ति छा जाती है। पेड़-पौधे भी हिलना छोड़ देते हैं। हवा से एक टीस-सी सुन पड़ती है। चारों दिशाएँ हाहाकार कर उठती हैं। फिर महाराणा प्रताप की रानी शान्ति को भंग करती हुई कहती हैं।)

महारानी—आर्यपुत्र, विचलित न हों। बच्चों के रोने-धोने का अर्थ यह नहीं है कि राणा का स्वाभिमान और गौरव हिल उठें। हिमालय जैसा आपका निश्चय भावुकता के एक हलके-से झोंके से डोलने लगे······

प्रताप—(चुप हैं। उनके आँसू अविरल गति से बह रहे हैं)

महारानी—आर्यपुत्र, आपने अपने वर्षों भटकने की बात कही है। क्या वीर सैनिकों के लिए यह कोई नई बात है? क्या इसी तरह महाराज राम ने सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ राक्षसों के दमन के लिए चौदह साल तक बनवास नहीं किया था? पाण्डवों को गुप्त रूप से बन में भयानक विपत्तियों का सामना न करना पड़ा था? ······विपत्ति किस पर नहीं पड़ी? कौन-सा सोना बिना अग्नि में तपाये निखरा है? बिना तराशे किस मणि का मूल्य बढ़ा है?

प्रताप—प्रिये, इन सब के कष्टों का अन्त भी तो था···मेरी विपत्तियों का तो अन्त नहीं······ एक को दूर करता हूँ, तो दो नई कठिनाइयाँ और आ जाती हैं······आज़ादी स्थिर रखना काँटों का ताज बन गया है······

महारानी—प्राणाधार, ईश्वर के घर में देर हो सकती पर अंधेर नहीं। महाराणा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिमालय भले ही झुक जाय, सात महासागर भले ही सूख जाएँ, अग्नि अपनी गर्मी छोड़कर भले ही शीतल हो जाय, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र भले ही अपने-अपने गुणों को छोड़ दें, लेकिन···राणा का गौरव और प्रण नहीं झुकना है······राजपूतों की आन का झण्डा सदा फहराता रहेगा। राजपूत कट सकता है, मर कर खाक हो सकता है, जंगल-जंगल मारा-मारा फिर सकता है, लेकिन हार नहीं मान सकता····· परिस्थितियाँ या प्रतिकूलताएँ उसे झुकने को विवश नहीं कर सकतीं, विपत्तियों और असुविधाओं में इतनी सामर्थ्य नहीं कि उसे कर्त्तव्य-मार्ग से विचलित कर सकें····· महाराणा की स्वाधीनता-भवानी जो-जो बलिदान माँगेगी, उसे वे सहर्ष देंगे। पर अपने दृढ निश्चय से नहीं डिगेंगे। नहीं हटेंगे!

प्रताप—(कुछ शान्त होकर) प्राणेश्वरि, तुम लोगों का यह दुःख-दर्द,······यह अभाव···ये असुविधाएँ तो देखी तक नहीं जातीं···हृदय भारी रहता है······

महारानी सो तो स्वभाविक ही है। इसका कारण यह है कि एक महावीर राजपूत सैनिक के साथ-साथ आप एक प्यार करने वाले पति और दयालु पिता भी हैं··· ·· लेकिन परिवार की अपेक्षा देश अधिक महत्त्व का है। हम तीन-चार प्राणियः के अल्प सुख से देश के कोटि-कोटि मनुष्यों का सुख महान् है···हम अपने देश की आजादी के लिए लड़ रहे हैं। पत्नी और बच्चे पति के कर्त्तव्य से कैसे विमुख हो सकते हैं···हम सब आपके साथ हैं हम आपके पग से पग और कंधे से कंधा भिड़ा कर चलेंगे। जीवन में स्फूर्ति, उत्साह और साहस बढ़ाते रहेंगे···नाथ, हमारे यहां कहा गया है 'न बिभेति कदाचनेति' धर्मात्मा कभी किसी विपत्ति से नहीं डरते। जिसका मार्ग सच्चा है, वह किसी से क्यों डरेगा? महाराणा, आपकी नसों में बप्पा रावल का खून बह रहा ··· राणा साँगा की वीरता अ··· है···आप उस वंश के महावीर हैं जिसका आतंक हिमालय से लेकर रामेश्वर तक छाया हुआ है···वह वंश मर जाएगा, पर अपने स्वाधीनता-व्रत को खण्डित न करेगा··· ··तलवार टूट भले ही जाए, झुकेगी कभी नहीं···कभी नहीं··

प्रताप—तो क्या तुम्हें अपना पहला राजसी जीवन याद नहीं आता है?

महारानी प्राणाधार, पहाड़ियाँ और जंगल ही हमारा राज्य हैं, भील ही हमारी प्यारी प्रजा हैं, ये हरे-भरे वृक्ष हमारे डेरे-तम्बू और महल हैं। उदयपुर कुम्हलनेर आदि के राजमहलों से भी अधिक सुख हमें इन जंगलों में मिल रहा है। स्वाधीनता के सैनिकों के लिए जंगल ही मंगल का स्थान है। आप हमारी असुविधा की तनिक भी चिन्ता न करें···पराधीनता के बन्धन संसार में सबसे बुरे हैं···हमारे यहां कहा गया है—'उत्क्रामातः पुरुष मावपत्थाः' ऊँचे उठो; नीचे कदापि न गिरो। निराशा और पराज्य की नहीं, आशा और सफलता की भावना करो। 'उद्यानं ते पुरुष नावयानम्' उन्नति करो। मनुष्यो, अवनति मत होने दो। गिराने वाले नहीं, उठाने वाले विचार और कार्य अपनाओ। प्राणेश्वर, इस प्रकार की शिथिलता और निरुत्साह आप जैसे महान् राजपूत वीर के लिए किसी भी प्रकार उचित नहीं है। ऐसी निराशा तो एक प्रकार की नास्तिकता है। उद्योगी देर-सवेर अपना कार्य पूरा करते हैं। निराश और पुरुषार्थ-विहीन व्यक्तियों की नाव ही बीच में डूबती है।

प्रताप—हम लोगों की यह दुर्दशा तो कभी-कभी मुझे विचलित कर देती है···सारी वीरता ग़ायब होने लगती है···कर्त्तव्य का ध्यान नहीं रहता···जी करता है सब कुछ छोड़-छाड़कर अधीनता स्वीकार कर ली जाए···

महारानी—प्राणाधार, इस क्षणिक भावुकता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

...सी कवि के ...हो सकती हैं, एक वीर सिपाही के लिए नहीं · आप अपने अतुलित शौर्य और सैनिक धर्म को धारण कीजिए। जहाँ अदम्य साहस और दूरदर्शिता है, वहां सब कुछ है। महाराणा, 'अग्ने शर्ध महते सौभगाय' ऐश्वर्य उत्साही के पैर चूमता है। जो उत्साही और कर्मनिष्ठ है, उसके पास दरिद्रता कैसे फटकेगी···प्राणेश्वर, आपके शत्रु भी आपकी वीरता, आपके शौर्य और साहस की प्रशंसा करते हैं। जब आपका सन्धि-पत्र शाही दरबार में पहुँचेगा, तो आपकी वीरता की स्तुति करने वाला अकबर क्या कहेगा ? शाही जीवन से अपने उद्धार की आशा लगा कर बैठी रहने वाली राजपूतनियों की क्या दशा होगी ? देश आपके हाथों आजादी की बाट देख रहा है···हिन्दू धर्म यवनों की कुटिलता से कराह रहा हैं · कोल, किरात और भील जैसी वन्य जातियां आपके द्वारा नए जीवन की आशा लगाए बैठी हैं···राणा जी, दुनिया में सम्पत्ति और राज्य नष्ट हो जाते हैं, नश्वर शरीर मिट्टी में मिल जाते हैं केवल एक ही चीज़ स्थायी रहती है। वह है मनुष्य का धर्म···आपका धर्म, आपका कर्त्तव्य, आपके विचार केवल सैनिक के ही होने चाहिएँ··· आप एक सैनिक के रूप में विख्यात हैं··· हिन्दू जनता आपको एक वीर सैनिक धर्म-रक्षक नेता मानती है, क्या आप इस प्रकार निरुत्साह होकर उस संचित कीर्ति को नष्ट कर देंगे ? कदापि नहीं, यह सर्वथा अनुचित ··· ··· ···

प्रताप—यह तो ठीक है, लेकिन क्या तुम इस राज-सन्तान को घास की रोटी खाते देख सकती हो साधारण व्यक्ति गेहूँ की रोटी खाते हैं. क्या इनके भाग्य में यह भूख, यह विपत्तियां—यह असुविधाएँ तुम देख सकती हो ?······बोलो, महारानी, क्या तुम्हें इन अबोध बालकों पर तरस नहीं आता ? मेरी स्वाधीनताप्रियता ने तो इन कोमल पुष्पों को जैसे मसलकर ही रख दिया है ! इस तरह जंगल में रहकर तुम राजरानी नहीं बन सकतीं······

महारानी—महाराणा, आप इन छोटी-छोटी बातों की चिन्ता न करें। जैसे अन्धेरे के बाद प्रकाश आता है; तूफान के बाद शान्ति आती है; भूकम्प के बाद स्थिरता आती है; संघर्ष के बाद सन्तुलन आता है; इसी प्रकार विपत्तियों के काले-काले बादलों में से ही गौरव और कीर्त्ति का सूर्य उदित होता है। मेरी या मेरे बच्चों की कुछ भी चिन्ता न करें। लानत है उस मेवे-मिष्टान्न पर जो पराधीनता में मिले···धिक्कार है उस राजमहल को जो मनुष्य की आज़ादी को समाप्त कर दे, वह शरीर नष्ट हो जाए जो पाँवों में बेड़ियाँ पहिन कर सुख और आराम चाहता है···उस प्रतिष्ठा को धिक्कार है. जो जाति-गौरव को ही नष्ट कर दे। उस स्वागत-सत्कार का बुरा हो जो पराधीनता के कुटिल बन्धन में बाँध डाले··· ···महाराणा, एक आज़ादख्याल· वीरात्मा में दस हज़ार मनुष्यों के बराबर बल होता है · वही जाति का मुकुटमणि बनता है, जनता को नई दिशा दिखाता है ·····जिसका मार्ग सचाई का है, उसे कोई नहीं हरा सकता··· · वह जंगलों में भागा-भागा फिरता भी अजेय है···उसकी आत्मा कारावास में बन्द नहीं की जा सकती······

प्रताप—महारानी, मैंने तुम्हारी सब बातें बड़े ध्यान से सुनी हैं। बहुत देर से मैं इस बात पर सोच रहा हूँ···लेकिन प्रिये, हमारे इस २५ वर्ष के संघर्ष को देखो और फिर यह देखो कि इतने दिनों में हम कितना कम कार्य कर पाए हैं···यों जंगलों में रहकर तुम राजरानी नहीं बन सकतीं···राज-सन्तान सुख नहीं पा सकती ··प्रताप नहीं देख सकता कि उसके असहाय और अनाथ बच्चों पर जंगल के सिंह और भेड़िए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमला करें। राजपरिवार के लिए राजमहल ही उचित स्थान है।

महारानी—(गला भर आता है) महाराणा, यह आप क्या कह रहे हैं ? क्या आप इन शब्दों का मतलब भी समझते हैं ? महाराणा, आप हम जैसे तुच्छ मानवों के लिए मस्तक न झुकाएँ। अपने कुल की मर्यादा अक्षुण्ण रखें···(कुछ रुकती है। उनका चेहरा तमतमा उठता है) कौन कहता है कि जंगल के भेड़िए और सिंह राणा की सन्तान पर आक्रमण करेंगे ? उनके अन्दर भी आपका स्वाभिमान···आपका गौरव···आपकी शक्ति और साहस विद्यमान है। वे सिंह के बच्चे हैं। इस राजस्थान के कण-कण में जो शौर्य, जो वीरता और शूरता है बप्पा रावल के वंशज कभी उससे विमुख नहीं हो सकते··· वे सैकड़ों यवनों-रूपी भेड़ियों को पराजित रखने की सामर्थ्य रखते हैं। महाराणा, आप मुझे राजमहलों में रहकर सुख-विलास में मग्न रहने वाली राजरानी न समझें। मैं राजस्थान की राजपूतनी हूँ। इस वीर-भूमि के भोजन और पानी से मेरा यह शरीर बना है···आप आजादी के देवता के उपासक हैं, तो मैं भी स्वाधीनता-भवानी की सच्ची पुजारिन हूँ। मेरा भी रोम-रोम आजादी की पुकार कर रहा है। पराधीनता के हलुवे से मुझे स्वाधीनता की यह घास की रोटी स्वाद लगती है···इन जंगलों के कन्द-फल-फूल घास, जल, हवा मेरे लिए पकवान से कम नहीं हैं···महाराणा, क्या आप नहीं जानते कि आपके इस निश्चय ने सती पद्मिनी, पन्ना धाय, राजरानी मीरा और महाराणा साँगा के हृदय में पितृलोक में कितनी बड़ी हलचल पैदा की होगी ! वे चिन्तित हो उठे होंगे कि कहीं ऐसा न हो कि मेवाड़ का गौरव डूब जाए, मेवाड़ की संचित कीर्ति नष्ट हो जाए ! मेवाड़ का स्वाभिमान जाता रहे··· ···क्या आपने मानसिंह से नहीं कहा था कि जिस राजपूत ने तुर्कों ... सम्बन्ध किया है, ... में या उसका स्वागत-सत्कार करने में मेवाड़ का प्रताप अपना अपमान समझता है ? राणा को डिगाना कोई सरल बात नहीं थी। जिसे आसफखाँ की विशाल सेना मेवाड़ की थर्मापिली में न विचलित कर सकी, जिसे अकबर अपने वश में न कर सका, उसकी प्रतिज्ञा खिलवाड़ थोड़े ही थी···नहीं, नहीं, महाराणा, कदापि अपना स्वाधीनता-व्रत नहीं छोड़ेंगे··· वे अपने पवित्र निश्चय से नहीं डिगेंगे··· मेरी चिन्ता छोड़िए नाथ, आर्य नारी पति के कर्त्तव्य की पूर्ति में ही अपना धर्म समझती है। स्वाभिमान और प्रतिष्ठा के लिए वह बड़ी-से-बड़ी विपत्ति को झेल सकती है···आग पानी से जीवन का खेल खेल सकती है··· मेरे लिए वही हितकर है जो आपके लिए इस अवसर पर उचित है।

महाराणा—(कुछ सोचते हुए) महारानी, तुम्हारी बातों ने मेरे मन में प्रकाश दिया है। धन्य है, तुम्हारा चिन्तन और तर्क ! धन्य है क्षत्राणी का साहस और शौर्य, धन्य है राजपूतनी की बुद्धि और त्याग ! आर्य नारियों ने इसी प्रकार पतियों के सुख-दुःख में साथ रहकर हाथ बंटाया है···नई हिम्मत, नई प्रेरणा और नया उत्साह दिया है···तुमने सीता और द्रौपदी की तरह सदा मेरे साथ रहकर जंगल-जंगल घूम कर, भूख-प्यास सह कर, कांटों और पत्थरों में चलकर, सच्चे अर्थों में राणा की सहधर्मिणी का कर्त्तव्य पालन किया है···मुझे भी मार्गदर्शन किया है···मेवाड़ का झण्डा नीचा नहीं होगा···नीचा नहीं होगा। स्वाधीनता-भवानी और भी जो-जो बलिदान मांगेगी वही दूँगा—तुम जो मेरे साथ शक्ति स्वरूपा हो, फिर मेरी पराजय का तो प्रश्न ही नहीं उठता है।

[पर्दा गिरता है]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

...तारवाद की धारणा

[श्री मदनमोहनलाल शर्मा]

भक्तिप्रधान धर्म का तात्पर्य ऐसे धर्म से है, जिसमें सगुण ईश्वर की उपासना पर बल दिया गया हो। सगुण ईश्वर वह है जिसे हम अपनी रक्षा के लिए पिता के समान समझें, जो वात्सल्य में माता के समान हो, जिसे हम अपना उद्धारक, मित्र और पालनकर्त्ता समझें; जो दीन-दयालु और भक्तवत्सल हों; जिसके नाम का श्रवण और कीर्तन किया जाए; जिसकी अर्चना, वन्दना और सेवा की जाए; जिसके चरणों में भक्त आत्मसमर्पण कर दे; मन्दिर में जाकर, गीत गाकर, नैवेद्य चढ़ाकर जिसकी पूजा की जाए। ऐसे ईश्वर के प्रति असीम प्रेम ही भक्ति है। उसके गुणों का ध्यान करते हुए उसकी पूजा करना सगुणोपासना कहलाती है।

पुराने वैदिक धर्म में तथा उपनिषदों के समय भक्ति का प्रचार प्रबल नहीं था, ब्राह्मण ग्रंथों का वैदिक धर्म कर्मकाण्डप्रधान था, यह साधारण जनता के लिए बड़ा भारी जंजाल था। उपनिषदों में इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया के कारण जिस ब्रह्म की उपासना पर बल दिया गया, वह इतना सूक्ष्म और निर्गुण था कि जनता के लिए उसका समझना बहुत ही कठिन था। जब ये दोनों धर्म जनता की धार्मिक पिपासा शान्त न कर सके तो भक्तिप्रधान धर्म का जन्म और प्रचार हुआ। पुराणों में इसका विस्तृत रूप से प्रतिपादन है, अतः इसे पौराणिक धर्म भी कहते हैं।

वैदिक युग के अन्त में उपनिषदों के समय इस धर्म का प्रारम्भ हुआ। इसके प्रवर्त्तक वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण थे। वे केवल राजनैतिक नेता ही नहीं थे, किन्तु नए धर्म के प्रवर्त्तक भी थे। इन्होंने यज्ञों में पशु-हिंसा, बलिदान और जटिल अनुष्ठानों का विरोध किया; चित्त की शुद्धि और भक्ति पर बल दिया। श्रीकृष्ण सात्वत कुल में उत्पन्न हुए थे, इसलिए इस मत को सात्वत भी कहा जाता है, इसके अन्य नाम पांचरात्र और भागवत भी हैं। कृष्ण की मृत्यु के बाद सात्वतवंश वालों ने उन्हें साकार ब्रह्म मान कर उनकी पूजा शुरु कर दी। भगवद्‌गीता इसी सम्प्रदाय का प्रधान ग्रंथ है, इसमें भक्ति की प्रधानता बताई गई है। गीता में स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् धर्म की रक्षा के लिए उस समय अवतार लेते हैं जब उसमें क्षीणता आने लगती है—

'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥'

पांचवीं शती ईसवी पूर्व तक कृष्ण और राम मनुष्य थे, किन्तु दूसरी शती ई॰ पूर्व तक वे विष्णु का अवतार बन चुके थे। ५वीं शती में अवतारों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी, पहले ये छः थे, बाद में दस हुए, इनमें बुद्ध को भी सम्मिलित कर लिया गया, अन्त में जैनियों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव आदि को समाविष्ट कर यह संख्या २४ तक पहुँच गई। इसी से अवतारों की संख्या बहुत अधिक हो गई। दूर की बातों को यदि छोड़ भी दिया जाए तो महात्मा गांधी जी का ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने हैं। वे हम सभी के सामने एक साधारण मानव की भान्ति इस संसार में जन्म लेकर आए, परन्तु वे होनहार तथा तीव्र बुद्धि वाले थे। उन्हें अपने प्यारे भारत देश से दिलोजान से प्रेम था। वे इसे पराधीनता की शृंखलाओं में जकड़ा देख कर बहुत दुःखी हुए। अतः उन्होंने अपना सारा जीवन भारत को स्वतन्त्र कराने में ही लगा दिया। अन्त में वे अपने इस कार्य में सफल हुए। वे दीनों के दयालु थे; अनाथों के नाथ थे, बेसहारों के सहारा थे, अर्थात् वे मानवता के सर्वस्व थे। यही कारण है कि वे आज भी भारत के बापू हैं। बापू ही नहीं, अपितु अब तो कुछ प्रदेशों में गांधी जी को अवतार मान लिया गया है और मूर्ति-पूजा शुरु हो गई है। ऐसा होना स्वभाविक भी है, क्योंकि सगुणोपासक देव में जो गुण होने चाहिएँ वे सभी उनमें थे। अतः गांधी जी को अवतार मानना भी तर्कसंगत ही है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धी-श्री-स्त्रीम्

[प्रा. सत्यभूषण 'वेदालंकार]

यह स्वर्णिम छन्दःसूत्र भारतवर्ष के महान् मनीषी ऋषि पिंगलाचार्य का है। इस सूत्र द्वारा छन्द शिक्षा के साथ-साथ लौकिक व्यवहार की भी अद्भुत शिक्षा दी गई है। "पिंगलच्छन्दः सूत्रम्" ग्रन्थ के प्रथम अध्याय का यह पहला ही सूत्र है जो दुनिया में अपने ढंग का अनुपम है। इस सूत्र में संज्ञासंज्ञि विभाग है। धी, श्री, स्त्री यह संज्ञी और 'म्' यह संज्ञा है। धी, श्री, स्त्री ये तीनों वर्ण गुरु-वर्ण के उपलक्षण हैं। सूत्रार्थ यह है कि जहां तीनों वर्ण गुरु हों, उनकी मगण संज्ञा होती है।

इस सूत्र द्वारा लौकिक शिक्षा यह दी गई है कि धी, बुद्धि आने के पश्चात् ही मनुष्य के पास श्री, लक्ष्मी आती है और लक्ष्मी प्राप्त करने के पश्चात् स्त्री प्राप्त होती है। अतः पहले बुद्धि की वृद्धि करे। "बुद्धिर्यस्य बलं तस्य" बुद्धिबल ही बड़ा है 'जिसके पास बुद्धि उसके पास बल" यह स्वयं सिद्ध सिद्धान्त है। बुद्धिबल प्राप्त होने से लक्ष्मी, सम्पत्ति आएगी ही। अतः लक्ष्मी, धन-धान्य चाहते हैं, तो पहले बुद्धि बढ़ाइये। मुद्राराक्षस में कवि विशाखदत्त ने आचार्य चाणक्य द्वारा यही कहलाया है, "बुद्धिस्तु मा गान् मम्", चाहे मेरे शस्त्र चले जावें, सेना मेरा साथ छोड़ देवे, पर मेरी बुद्धि मुझे छोड़कर कहीं न जावे। यह है बुद्धि की महिमा। "बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति" बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है। ऐसा मनु महाराज का कथन है। बुद्धि को विकसित, निर्मल बनाना हो, तो ज्ञान प्राप्त कीजिये, ज्ञान का कोश संचित कीजिये, सरस्वती देवी की आराधना कीजिये। पण्डित भी उसे कहते हैं, जिसके पास सदसद्विवेकिनी बुद्धि होती है, "पंडा सदसद्विवेकिनी बुद्धिः विद्यते, यस्य सः पंडितः"। गायत्री मंत्र द्वारा भी प्रतिदिन परमात्मा से यही प्रार्थना की जाती है, "धियो यो नः प्रचोदयात्—वह प्रभु हमारी बुद्धियों को भली प्रकार प्रेरित करे।" मनुष्य भी वही है, जो मननशील हो, विचारशील बुद्धिमान् हो। "साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।" साहित्य, संगीत और कला से रहित मनुष्य पूंछ और सींग से रहित साक्षात् पशु है। साहित्य, संगीत और कला भी बुद्धि से प्राप्त होते हैं। इस कारण भर्तृहरि महाराज लिखते हैं—

"वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह
न मूर्खजनसंसर्गः सुरेन्द्रभवनेष्वपि।"

पर्वतों और दुर्गम स्थानों में वनचरों के साथ घूमना अच्छा है, पर स्वर्ग में भी मूर्खों के साथ रहना अच्छा नहीं है। वेद का भी यही आदेश है, "मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्" हे मनुष्य, तू मननशील, विचारशील सचमुच मनुष्य बन और अपने समान दिव्य मनुष्य उत्पन्न कर"।

वेदान्त के अनुसार बुद्धि कहते हैं, निश्चयात्मिका अन्तःकरण वृत्ति को। यदि विवेक, सदसद् का निश्चय, न हो तो मानव की कितनी हानि होगी। अतः जीवन-संग्राम में सफल होने के लिए, जीवन को उच्चतम शिखर पर ले जाने के लिए बुद्धि को बढ़ाना, उसका सदुपयोग करना नितान्त आवश्यक है। बुद्धि के पश्चात् श्री, लक्ष्मी का स्थान है। बुद्धि के कारण ही लक्ष्मी प्राप्त होती है परन्तु लक्ष्मी का बढ़ाना भी परमावश्यक है। वैदिक विवाह में 'सप्तपदी' की विधि के अनुसार "रायस्पोषाय त्रिपदी भव" तीसरी बार पग को बढ़ाते हुए 'वर' कहता है, कि तू ऐश्वर्य की प्राप्ति और वृद्धि के लिए तीसरा पग बढ़ा। अतः गृहस्थाश्रम में ऐश्वर्य को बढ़ाना चाहिए। लक्ष्मी की महिमा वेद में भी गाई गई है। अलक्ष्मी, दरिद्रता की भर्त्सना करते हुए वेदमंत्र में कहा गया है—

"अरायि काने विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे" (ऋग्.)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

...नयकर, सदा ...वाली दरिद्रता तू पर्वत ...ओर भाग जा। भर्तृहरि महाराज धन की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—

"यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ॥"

जिसके पास धन है, वही कुलीन, पंडित, शास्त्रवेत्ता, गुणवान्, उपदेशक, देखने योग्य है। सब गुण सोने का आश्रय लेते हैं।

अतः बुद्धि द्वारा लक्ष्मी को बढ़ाते रहिये। ऐसा करने से स्त्री स्वयं उपस्थित हो जाएगी। स्त्री भी गृहस्थ का रत्न है। "न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते।" घरवाली ही घर है। दीवारें घर नहीं। अब प्रश्न है, कि बुद्धि कैसी हो; अगला सूत्र है 'वरा सा भ्'— बुद्धि श्रेष्ठ हो, उत्तम हो। बुरी, कलुषित बुद्धि अनेक उत्पात खड़े कर देती है जैसे आजकल के विज्ञान का दुरुपयोग। अस्तु, वह बुद्धि रहती कहां है 'का गुहा र्' ? इसका उत्तर है "वसुधा" वह पृथ्वी पर ही प्राप्त होती है। मनुष्यों में ही बुद्धि होती है। संसार से ही बुद्धि का पाठ पढ़िये। फिर प्रश्न किया है, "सा ते क्" वह बुद्धि किस आश्रय पर ठहरी है, उत्तर मिला "गृहे" घर में। घर में ही मालूम हो जाता है कि किसकी बुद्धि कैसी है, कहां ठहरी हुई है। घर की गृहिणी, स्वामी, बच्चे सब बुद्धिमान् हों तो समझिये घर स्वर्ग है। अगला प्रश्न है, "कदा स ज्" वह कब प्राप्त होती है। उत्तर मिला "धादि परः" धारणा-शक्ति से, ध्यान करने से, एकाग्र होने से। अतः बुद्धि प्राप्त करने के लिए धारणाशक्ति का पूर्ण विकास कीजिये। पुनः प्रश्न किया गया, "किं वद" क्या करता हुआ वह बुद्धि प्राप्त करता है। उत्तर मिला "न हसन्" जब शिष्य हँसी, चंचलता आदि को छोड़ देता है।

यह है पिंगलाचार्य का सारगर्भित श्रुति-सम्मत, बुद्धिपूर्ण, दूरदर्शितापूर्ण, सूत्र-संचय। आशा है, पाठक इस ओर ध्यान देंगे।

मासिक द्वादश राशिफल

[पं० यशोदानन्द 'उनियाल' राज-ज्योतिषी]

मेष—सेहत ठीक, विद्या में विघ्न, सन्तान कष्ट, सरकार से नेक, इज़्ज़त।
वृष—कदरे सेहत खराब, धन खर्च, कारोबार मध्यम, रिश्तेदारों से अनबन।
मिथुन—मन अशान्त, झगड़ा पेश, सरकार से चिन्ता, माता को जयदाद की चिन्ता।
कर्क—सेहत ठीक, साधारण लाभ, खर्च विशेष, क्लेश, मन अशान्त।
सिंह—सफर पेश, कारोबार में कदरे ह्रास, घरेलू झगड़े, दुश्मनों का होना, परिणाम शुभ।
कन्या—सन्तान सुख; प्रोपर्टी की चिन्ता, खर्च विशेष, लाभ कम, कारोबार बदस्तूर।
तुला—धन-लाभ मध्यम, बनते कामों में रुकावट, सन्तान को कष्ट, मन अशान्त।
वृश्चिक—राज-मान, धन-लाभ, बड़ों से मुलाक़ात, मित्रों से सुख, कारोबार अच्छा।
धन—स्त्री-कष्ट, कदरे सेहत खराब, भाई-बहिन को कष्ट, धन-लाभ, चिन्ता।
मकर—धन-लाभ, कारोबार मध्यम, रक्त-विकार, खर्च ज्यादा, श्रम विशेष।
कुम्भ—शत्रु-भय, खर्च ज्यादा, भ्रम, धन-सम्मान-जायदाद-सम्बन्धी चिन्ता।
मीन—सेहत ठीक, धन-लाभ, कारोबार अच्छा, पुरुषार्थ-सिद्धि, शत्रु-नाश।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जड और चेतन

[वैद्य गण्डाराम शास्त्री]

जो अपनी पुष्टि बाहर से आहार लेकर करते हैं, तथा समय पर अपनी फसल को उत्पन्न कर सकते हैं, वे चेतन कहलाते हैं। जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, वृक्ष आदि। इससे विरुद्ध, जो अपना आहार बाहर से नहीं लेते, न बढ़ते-फूलते हैं, तथा न ही सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं, वह जड कहलाते हैं।

यह अन्तर अत्यन्त सुस्पष्ट तथा सर्वमान्य है। इसी अन्तर को देखकर प्रकृति तथा पुरुष के सिद्धान्त का निर्माण हुआ हैं। यह ध्रुव प्रत्यक्ष झुटलाने से झुटलाया नहीं जा सकता। परन्तु वैज्ञानिकों का कथन है, कि संसार का पदार्थ चाहे जड हो या चेतन प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है। उसे स्थिरता कहीं भी नहीं। गंदम का एक दाना किसी मनुष्य का आहार बन कर परिवर्तन-प्रवाह द्वारा बहता-बहता शुक्रकीट बन जाता है। इसके उपरान्त वही शुक्रकीट माता के उदर में सुपुष्ट होकर, एक सुन्दर बालक के आकार से संसार-स्थली को शोभित करने लग जाता है। परिवर्तन-प्रणाली अब भी कार्य पर रहती है। अब उसे ललित-यौवन सजाता है। नई भड़क जाग पड़ती है। इसके उपरान्त बुढ़ापा अपना प्रभाव डालता है। तारुण्य की लचक टूट जाती है। सौन्दर्य झुरियों-तले दब जाता है। तारुण्य-सम्पत् कर्पूर हो जाती है। सरू-सी सुन्दर काया मध्य से लुढक जाती है। इस अवस्था को देख यह अनुमान भी कठिन हो जाता है, कि क्या कभी इस शरीर पर कमल-सी कोमलता भी थी? जिसे देखकर माता के नयन-रूपी भ्रमर प्रफुल्लित होते थे।

इसके उपरान्त मृत्यु-व्याघ्री आ दबोचती है। काया-शक्ति शून्य होकर मिट्टी हो जाती है। अब इससे भय आता है। हम श्मशानभूमि में ले जाकर इसे भस्म कर डालते हैं। वह भस्म फिर उसी प्रकार पौदों का आहार बन जाती है। और फिर किसी फल या अन्न आदि का रूप धारण कर फिर उसी परिवर्तन के चक्र पर चल पड़ती है। इसका तत्त्व यह हुआ, कि संसार का प्रत्येक कण परिवर्तन के चक्र में घूमता-घूमता अनेक रूपों में परिवर्तित होता रहता है। और उपर्युक्त उदाहरण के अनुसार कभी जड और कभी चेतन बनता रहता है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है, कि जड तथा चेतन पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हुए भी एक ही तत्त्व के दो रूप हैं, जोकि बहुरूपिये की भान्ति कभी जड तथा कभी चेतन बन जाता है।

आप चकित तो अवश्य ही होंगे, कि यह प्रत्यक्ष-विरुद्ध बातें क्यों कही जा रही हैं। जिस प्रकार दिन तथा रात इकट्ठे नहीं हो सकते, उसी प्रकार जडता तथा चेतनता का एक ही तत्त्व में समावेश करना असम्भव तथा प्रत्यक्ष-विरुद्ध है।

यह शंका यद्यपि अतीव प्रबल है, परन्तु गंभीर दृष्टि से विचार करने पर शीघ्र ही निराधार सिद्ध हो जाती है और उपर्युक्त सत्य करामलकवत् सुस्पष्ट हो जाता है। जिस प्रकार दिन और रात पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हुए भी काल से भिन्न नहीं हैं। अथवा जब यह प्रतीति हो जाती है, कि काल ही दिन तथा रात के रूप में हमें पृथक्-सा प्रतीत हो रहा है, और वास्तव में उसके विभाग नहीं किए जा सकते तब इस प्रकार यह भी सिद्ध हो जाता है, कि जड तथा चेतन की पृथक्ता भी एक ही चिदाकाश के दो स्वरूप हैं, जो वास्तव में घुले-मिले हैं, परन्तु दिन तथा रात की भान्ति पृथक्-से प्रतीत होते हैं। और भी देखें, हमारे हाथ के दो तले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। यदि ... मूर्ख कह दे, कि ... तल से पृथक् है, तो यह उसकी मूर्खता ही होगी, क्योंकि वहां उन्नतता तथा अवनतता परस्परालम्बित हैं, और वह एक ही हाथ के दो पहलू हैं। ठीक इसी प्रकार जडता तथा चेतनता भी एक ही चिन्मयतत्त्व के दो पहलू हैं और सर्वत्र परस्पर घुले-मिले हैं। जड वस्तु सदा जड नहीं रहती। वह भी चेतन शरीर का अंग बन कर, चेतन-स्वरूप तथा चैतन्य-पोषक बन जाती है। अर्थात् आज का जड कल को चेतन बन सकता है। यदि यह प्रकाश तथा अन्धकार के समान एक-दूसरे के विरोधी हों, तो यह बात इनमें असम्भव हो। मनुष्य का भुना-पका आहार जड है। पौदों द्वारा पृथ्वी से चूसे जाने वाले अंश जड ही हैं। परन्तु वही जडता को छोड़कर शनैः शनैः चेतन बनते रहते हैं। क्या इससे यह सम्भव नहीं, कि जडता तथा चेतनता की स्थिति प्रत्येक कण में सम्भव है। कुछ समय की बात है, मैंने एक फटा हुआ मशीरुल तिब्बा नामक उर्दू का पत्र देखा जोकि १९३५ के किसी मास का था। उसमें एक लेख था—'मोतियों की मौत' जिसका सार इस प्रकार है—मोती भी मर जाते हैं और पुनर्जीवित भी हो जाते हैं। एक बार आस्ट्रेलिया की मलका को मियादी ज्वर हो गया। उसके गले की मोतियों की माला ज्वर की ऊष्मा से हतप्रभ हो गई और जौहरी के कहने से, एक सरकारी जहाज की देख-रेख में, उसे कुछ समय समुद्र में रखा जिस से वह फिर उज्ज्वल प्रभा वाली बन गई। इसी प्रकार पैरिस के अजायबघर में एक मोतियों का हार रखा है। अब से बहुत देर पहले उस का मूल्य कई लाख रु० आंका जाता था। परन्तु अब वही हार हजारों के मूल्य का रह गया है। जौहरी कहते हैं कि यदि यह हार किसी सुन्दरी के गले में डाल दिया जाये, तो यह फिर लाखों का बन सकता है। इस का तत्त्व यह है, कि जड मोती कभी बढ़ते और कभी घटते भी हैं। अर्थात् उन पर अनुकूलता तथा अननुकूलता का विशेष प्रभाव पड़ता है। यह एक जीवन का ही लक्षण है।

इसी तत्त्व को स्पष्ट करते हुए वेद भगवान् कहते हैं—'तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके' इत्यादि। इसका तत्त्व यह है, कि वह तत्त्व कभी हिलता है और कभी नहीं भी हिलता। वही दूर से दूर तथा निकट से निकट है, सारी बात का तत्त्व यह निकला कि संसारका प्रत्येक पदार्थ चाहे जड हो या चेतन एक ही मूल तत्त्व का रूपान्तर है। इसी लिये यह बात स्वयं सिद्ध है, कि जड तथा चेतन का झगड़ा केवल दृष्टि-भ्रम की उपज है। वास्तव में चारों ओर एक चित्तत्त्व का ही साम्राज्य है। किसी अन्य तत्त्व को समझना न केवल गलती ही है, अपितु अपने-आप को गर्त में फेंकना है। वेद की उक्ति है—

"ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात् पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।"

आगे-पीछे, दायें-बायें, नीचे-ऊपर, दिखाई देने वाला संसार एक ब्रह्म का ही रूप है। अष्टावक्र जी भी इसी उक्ति के समर्थक हैं। जैसे—

उष्णत्वं चैव शैत्यञ्च मृदुत्वञ्च यथा जले
आत्मनो हि तथाभिन्नं विश्वमात्मविनिर्गतम्॥

जिस प्रकार द्रवता, शीतता और मृदुता जल से पृथक् नहीं हो सकती उसी प्रकार आत्म-सम्पन्न जगत् आत्मा से पृथक् नहीं। इस लिए हमारा तो निश्चय है:—

जहां देखा जिधर देखा,
देखा उसी इक यार को,
और कैसे मुझे भ्रम हो,
जो कर लिया दीदार को॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काव्य की परीक्षा

[श्री नरेशचन्द्र मिश्र]

ललित-लवंग-लता-परिशीलन-कोमल-मलय-समीरे।
मधुकर-निकर-करंबित-कोकिल-कूजत्-कुंज-कुटीरे ॥

प्रभात-वेला में वायु-सेवन के लिए अलिन्द का द्वार खोलते ही महाराज के कान में समुद्र की ओर से आती ठण्डी हवा के साथ कवि जयदेव की अमर कृति 'गीत-गोविन्द' की कोमल कान्त पदावली गूँज गयी। दूर नारियल के उद्यान में कोई श्रमिक-बाला संगीत-प्रवीण किन्नर कन्याओं को लजाने वाले मोहक स्वर में गीत गोविन्द का पद गान कर रही थी।

गीत के माधुर्य से अभिभूत महाराज की विचारधारा एक निराले पथ पर बह चली। बंगाल और उड़ीसा के कोने-कोने में थोड़े ही दिनों के अन्दर युवक कवि जयदेव गीत-गोविन्द के कारण विख्यात होता जा रहा था।

धान के खेत में काम करते कृषकों, ताड़ और केले के उद्यान में फल तोड़ते श्रमिकों से लेकर ऊँचे वर्ग के सभी लोग गीत गोविन्द की पुण्य-सलिला में अवगाहन द्वारा अपना पापपंक प्रक्षालन कर रहे थे।

विंदुविल्व ग्राम के निवासी इस साधारण वैष्णव-भक्त की रचना भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर के प्रत्येक भक्त पुजारी के कण्ठ से निकल कर उसकी श्रेष्ठता का प्रमाण दे रही थी।

आर्यावर्त के कोने-कोने से जगदीश के दर्शनार्थ आने वाला भक्त-यात्रियों का समूह गीत गोविन्द का पुण्य सुरभित पराग ले जाकर अपने ग्राम और नगरों में छिड़काए दे रहा था।

'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' राजा अपने देश में ही आदर पाता है, किन्तु विद्वान् सर्वत्र पूजित होता है, की लोकोक्ति इतनी सत्य है। राजा स्वयं में कहने लगा—"कुछ ही दिनों में मेरे प्रजावर्ग का यह साधारण तिलकधारी वैष्णव सारे देश में विख्यात हो जायेगा, जबकि शासनकाल के बाद मेरा कोई नाम तक न लेगा।"

और कुछ ही क्षणों के शासनकाल की निर्बलता का अनुमान करने वाले राजा ने विद्या-बल से स्वयं को अमर बना देने की एक योजना सोच डाली। शीघ्र ही योजना को मूर्तरूप भी दे दिया गया। उसने अन्य 'गीति-गोविन्द की रचना करके अपने राज्य में घोषणा करवा दी कि अब इसी 'गीत-गोविन्द' का गान जनता को करना होगा।

खड्ग की छाया से त्रस्त जनता बलात् अपने ऊपर लादे गये नवीन 'गीत-गोविन्द' के पद गाने लगी। उद्यानों और खेतों के स्वच्छन्द पक्षियों के अतिरिक्त सभी जयदेव का गीत भूल गए। जगन्नाथ मन्दिर के पुजारी और सेवक राजा के भय से उसी की रचना के पद जगदीश को सुनाने लगे।

दूर-दूर से आने वालों तीर्थ-यात्रियों को भी राजा के गीत-गोविन्द की पदावली को बेवस होकर सुनना पड़ता था।

राज-भय से कुछ समय के लिये तलवार के ढकने से जयदेव ने गीत-गोविन्द का मुँह बन्द कर दिया।

हाँ, विन्दुविल्व ग्राम के कोने-कोने से मूल गीत-गोविन्द की मधुर तान अभी भी सुनाई देती थी। अपनी प्रिया पद्मावती के साथ विन्दुविल्व के खेतों और उद्यानों में नाच-नाच कर भक्त कवि जयदेव राधा-विहारी को प्रसन्न करने के लिए अपने 'गीत-गोविन्द' के पद गाया करता था। उसके मन में राजाज्ञा के प्रति किसी प्रकार का शोक-मोह या विकार नहीं आया और न उसने इस राज-वर्जना पर कोई ध्यान ही दिया। राज-कर्मचारी भी कवि जयदेव के भक्त होने के कारण उसके गान पर प्रतिबन्ध लगाने की इच्छा नहीं रखते थे।

दर्शनार्थ जगदीश के मन्दिर को ओर जाते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

...और झांझ ...ता के साथ निर्भय ...गोविन्द के पदों में खोया राजमार्ग पर चला जा रहा है। क्रुद्ध राजा के एक ही संकेत पर सेवकों ने वन्दी बना कर भक्त जयदेव के मन्दिर की ओर जाते चरणों को राजसभा की ओर बर्बस चलने को वाध्य कर दिया।

"राजाज्ञा का उल्लंघन करने का यह प्रयास! किसके वल तुमने भ्रष्ट गीत गोविन्द का पद खुल कर गाने का दुस्साहस किया?" क्रोध से गरजते हुए राजा ने कराल काल का रूप बनकर जयदेव से पूछा।

"जगदीश के बल पर महाराज, उन्हीं की आज्ञा से मैंने रचना की है, गीत गोविन्द की" कवि ने मृगछौने-जैसी आंखें नचा कर अत्यन्त भोलेपन से उत्तर दिया।

"और मेरा गीत गोविन्द क्यों नहीं गाते तुम?"

"उसे गाने के लिए हृदय से प्रेरणा नहीं आतंक की आवश्यकता है महाराज, और मैं इस भावना से दूर जा चुका हूँ।"

"स्पष्ट शब्दों में अपना प्रयोजन व्यक्त करो मैं तुम्हारा साहित्य सुनने का आकांक्षी नहीं।"

"काव्य की माला पिरोने के लिए हृदय की भावनाओं के स्वाति से उपजे सच्चे मोतियों की आवश्यकता पड़ती है महाराज। बुद्धि के व्यायाम से बनाए गए काँच के टुकड़ों का मूल्य अरसिक जन चाहे जितना दे डालें, किन्तु जौहरी के आगे तो वह निर्मूल्य ही है।" कवि ने अपनी स्पष्टोक्ति से सारे दरबार को त्रस्त कर दिया।

'अच्छा तो मेरा गीत गोविन्द बुद्धि का व्यायाम है और तुम्हारा जगदीश की प्रेरणा।"

"निस्सन्देह, मेरे गीत गोविन्द का एक-एक पद, उसका एक-एक चरण गोविन्द की इच्छा और प्रेरणा का ही प्रतिफल है।"

"तुम्हारी बात का प्रमाण क्या है कवि?"

"प्रमाण स्वयं भगवान् जगन्नाथ हैं, महाराज। इस विवाद की अपेक्षा यही श्रेयस्कर होगा कि हम दोनों उन्हीं से इसका निर्णय कराएँ।"

"भगवान् की मूर्त्ति कैसे निर्णय करेगी, जयदेव?"

"जिसकी रचना श्रेष्ठ होगी उसे स्वयं स्वीकार करना होगा उन्हें। और कोई मार्ग नहीं महाराज।"

जगन्नाथ मन्दिर के गर्भ-गृह के बाहर प्रांगण में महाराज, उनके दरवारी तथा असंख्य जनता हृदय में कुतूहल का ज्वार समेटे कुछ चमत्कार देखने को एकत्र थी।

धीर गम्भीर चाल से चलकर स्तुतिकार जयदेव भगवान् जगदीश की मूर्त्ति के निकट पहुंच गया। मूल गीत गोविन्द एवं उसकी ईर्ष्या से उत्पन्न प्रतिकृति दोनों को समान आदर से लेकर उसने मूर्त्ति की सबसे नीचे वाली सीढ़ी पर रख दिया।

'प्रभु' तुमने भक्ति की सुखद निद्रा में सुला कर मुझे 'गीत गोविन्द' का स्वप्न देखने को विवश किया है, इसकी एक-एक पंक्ति में एक-एक अक्षर में स्वयं तुम विद्यमान हो" भाव-विह्वल स्वर में प्रणाम करते हुए जयदेव ने कहा—'किन्तु इस देश के शासक को यह बात स्वीकार नहीं है। तुम स्वयं जिस गीत गोविन्द को प्रिय समझते हो उसे अपने कर-कमलों के स्पर्श द्वारा गौरवान्वित करो।'

अपनी बात को पूरी करके जयदेव ने वाहर निकल कर मन्दिर का विशाल कपाट बन्द कर दिया। एकाएक कुछ स्मरण करके वह पुनः मुड़ा और एक पल्ले को थोड़ा खोलकर भगवान् जगन्नाथ को सहेजते हुए बोला—'देखो गोपी-वल्लभ, महाराज के आशा के अनुरूप कहीं तुम सचमुच ही काठ के न बन जाना। आज तुम्हारी प्राणवंत लीला द्वारा ही तुम्हारे इस तुच्छ भक्त की लाज वच सकेगी।

द्वार कुछ समय के लिए बन्द हो गए। बाहर उत्सुक जनता आपस में कानाफूसी कर रही थी। महाराज की आंखें अपने प्रतिद्वंद्वी के लिए व्यङ्ग्य एवं उपेक्षा के विद्रूप रंगों से भरी थीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किन्तु उन सबकी ओर से ध्यान हटा कर महाकवि हृदय में विश्वास की थाती संजोए मोहक स्वर से गीत गोविन्द का स्तुति-पद गा रहा था।

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदं
केशव धृतमीनशरीरे
जय जगदीश हरे।

समय बीतता गया, गर्भ-गृह में निश्शब्द सन्नाटा था। बाहर गीतकार के मुख से केशव के यशकीर्तन की अजस्र धाराएँ वेग से निकल रही थीं—

"केशव धृतहलधररूप
केशव धृतबुद्धशरीर
केशव धृतकल्किशरीर
केशव··· ···"

कवि की स्वर-धारा गीत-गोविन्द के पदों के साथ ही ऊँची होती गयी। मंदिर के पत्थरों से टकरा-ट... दिशाओं में गूँज रही ... भावना के सागर में हिलोर ... ऊँचे स्वर में मौज से अन्तिम पद पूरा किया।

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्बिभ्रते।
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते॥
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते।
म्लेच्छान् मूर्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

और अन्तिम पद पूरा होने के बाद ही एक शब्द के साथ गर्भगृह के कपाट खुल गए। विस्मित राजा ने देखा जयदेव का गीत-गोविन्द भगवान् के काष्ठ-निर्मित उठे हाथों पर गौरव से रखा हुआ है।

आश्चर्य-विस्मित होकर वह दौड़कर महाकवि के चरणों पर गिर पड़ा। 'गीत-गोविंद' पर लगाया प्रतिबन्ध समाप्त हो गया।

अनमोल वचन

१. जीवन एक प्रश्न है, मरण उसका सरल उत्तर है। —जयशंकर

२. मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि मैं अन्दर से सुन्दर बनूँ। —सुकरात

३. जो समय को नष्ट करता है, समय उसे नष्ट कर देता है। —शैक्सपीयर

४. जो परिश्रम से थक कर चूर नहीं हो जाता उसे लक्ष्मी नहीं मिलती। जो केवल भाग्य के भरोसे बैठा रहता है, उसका भाग्य भी बैठ जाता है। जो आगे बढ़ता है उसका भाग्य भी आगे बढ़ता है। —ऐतरेय

संग्रह-कर्ता—राजेन्द्रप्रसाद शर्मा (नंगलडैम)

- अक्रोध से क्रोध को जीतो, असाधु को साधु से जीतो, कृपण को दान से तथा झूठ को सत्य से जीतो।
- राग के समान अग्नि नहीं, द्वेष के समान मल नहीं, पांच स्कन्धों के समान दुःख नहीं, शान्ति के समान सुख नहीं।
- जो उद्योगी, सचेत, सुकर्मा, सुविचारी, धर्मानुजीवी तथा अप्रमादी है उसका यश बढ़ता है।
- जिस पुरुष की आकांक्षाएँ समाप्त नहीं हुईं, उसकी शुद्धि नंगे रहने, जटा बढ़ाने, मिट्टी मलने, उपवास करने, कड़ी भूमि पर सोने, धूल लपेटने से नहीं होती है।

संग्रह-कर्ता—राधेश्याम अग्रवाल विशारद, कर्वी (बांदा)

- सेवा समीप से, आदर दूर से, ज्ञान भीतर से।
- तप में तीन वस्तुएँ हैं—चित्त-शुद्धि, निर्माण-शक्ति, ज्ञान-शक्ति। तप करते समय अन्तिम दोनों के विषय में अनासक्ति हो तो तीनों की प्राप्ति होगी।
- कर्म छोड़ना असम्भव है—क्योंकि छोड़ना भी तो कर्म ही है।
- संन्यास लेने का कोई अर्थ ही नहीं होता, क्योंकि 'संन्यास' का अर्थ ही न लेना है। —विनोबा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाप और पुण्य

[प्रो. जगदीश मित्र एम. ए.]

अनादि काल से मानव अपने आचरण का विश्लेषण करने का प्रयास करता रहा है। अपने आचरण को वह सत् तथा असत् या पुण्य तथा पाप में बांटता आया है। लेकिन पाप या पुण्य का मानदण्ड क्या है, इसके विषय में सदैव मतभेद रहा है।

किसी विचारक का मत है कि आचरण ही पाप तथा पुण्य की कसौटी है तो कोई यह मानता है किसी कार्य की प्रेरक भावना ही पाप या पुण्य का निर्णय करने वाला मानदण्ड है। कोई सज्जन यह विश्वास रखते हैं कि दुर्बलता ही पाप है, क्योंकि 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं।'

किन्तु पाप के इन मानदण्डों को ध्यान में रखकर हम पाप की परिभाषा निश्चित नहीं कर सकते। दो व्यक्तियों के आचरण एक समान होने पर भी एक का कार्य पाप कहलाता है तो दूसरे का पुण्य। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति किसी की हत्या करने पर 'पापी' होने के कारण दण्ड का भागी होता है, किन्तु एक सैनिक अनेक विपक्षियों की हत्या करके भी प्रशंसा ही पाता है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि बाह्याचरण को किसी प्रकार भी पाप या पुण्य की कसौटी नहीं माना जा सकता।

किसी कार्य की प्रेरक भावना शुद्ध होने पर भी किसी कर्म के पाप-पुण्य होने का निश्चय नहीं किया जा सकता। एक बालक अतिप्रेमपूर्वक एक अंगारे को छूता है, उसका हाथ जल जाता है। उसे पीडा होती है। उसे पीडा रूपी दण्ड क्यों मिला? उसने क्या पाप किया था? निश्चय ही उसकी भावना बुरी न थी।

वास्तव में पाप अपने में कोई आचरण नहीं। 'पाप' तो एक नकारात्मक (negative term) शब्द है। जो धर्म नहीं—जो पुण्य नहीं, वह पाप है।

कणाद ने कहा है, 'जो अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति कराए वही धर्म है।' किन्तु अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि कराने वाली भावना धर्म है या वैसा आचरण धर्म है यह पता नहीं लगता।

सत्य तो यह है कि उपर्युक्त परिभाषाओं में हम अपने दृष्टिकोण को अतिसीमित रखते हैं। लौकिक और पारलौकिक उन्नति का साधन क्या है—हम इस बात पर विचार नहीं करते।

मेरा विश्वास है कि सृष्टि का स्वाभाविक क्रम हमें उन्नति—विकास की ओर प्रेरित करता है—इसलिए जो कर्म हमारे अस्तित्व की स्वाभाविकता को बढ़ाता है, वह धर्म है; जो उसका विरोध करता है, वह पाप है।

हमारा अस्तित्व एकांगी नहीं। यह अनेक कोषों में बद्ध है। प्रत्येक जीवधारी में एक आत्मा है, आत्मा प्रकृति को चेतनता देती है। चेतनता विकसित होकर बौद्धिकता के गुण को प्राप्त करती है। आत्मा और बुद्धि का सम्बन्ध मन से भी है। मन इन्द्रियमय पञ्चभौतिक स्थूल शरीर की सूक्ष्म नैसर्गिक प्रवृत्तियों का केन्द्र है। इसके पश्चात् हमारा शरीर एक वृहत् कोष में निवास करता है जिसे समाजकोष कहा जा सकता है। इसलिए स्थूल रूप में धर्म शब्द का तात्पर्य समाजधर्म माना जाता है। किन्तु समाज के अतिरिक्त हमारा दैहिक अस्तित्व होने के कारण भी हमारे कुछ धर्म हैं जिन्हें 'व्यक्तिधर्म' कहा जा सकता है।

समाज से हम बहुत-कुछ लेते हैं। यदि हम समाज से केवल लेते ही रहें और लौटा कर कुछ न दें तो समाज की व्यवस्था का छिन्न-भिन्न होना निश्चित है। समाज-व्यवस्था को कायम रखने के लिए सामाजिक क्षेत्र में हमारा यही धर्म है कि हम समाज से जितना लें कम-से-कम उतना अवश्य लौटा दें। दूसरों से आत्मवत्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यवहार करें, उन्हें अपने ही आत्मीय तथा अंग मान कर।

उसके पश्चात् व्यक्ति-धर्म आरम्भ होते हैं। संसार में एक व्यक्ति का धर्म दूसरे के धर्म से उसी तरह जुदा है जैसे उसका रूप, आवाज, हस्तलिपि आदि अलग-अलग है। व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताएं, मानसिक प्रवृत्तियाँ, बौद्धिक निष्कर्ष और अध्यात्म का संस्कार मिल कर जिस ओर संकेत करें—वही उसका धर्म है। यदि इन विभिन्न कोषगत प्रवृत्तियों में से किसी एक ने भी किसी कार्य का निषेध (veto) कर दिया तो वह कार्य धर्म न रह कर अधर्म हो जाता है।

फिर हमें व्यक्ति-धर्म तथा समाज-धर्म का समन्वय करना होता है यदि इन दोनों में से कोई एक किसी कर्म का निषेध करता है तो वह भी अधर्म है। इस प्रकार इन विभिन्न कोषों के एक-मत-सूचित धर्म को ही हम वास्तव में धर्म कह सकते हैं। जो इस के विरुद्ध हैं, वह पाप है। थोड़ [illegible] सभी कोषों की एकम[illegible] पाप है। इसीलिए श्रीकृष्ण ने गीता [illegible] को 'निर्द्वन्द्वः नित्यसत्त्वस्थः' होने के लिए कहा है। यह एकमति ही एकाग्रता है, यही समाधि है तथा यही समत्वयोग है।

इस प्रकार हम पाप की परिभाषा एक शब्द में 'दुविधा' कह कर तथा पुण्य की 'एकाग्रता' कह कर कर सकते हैं।

इस दृष्टिकोण से एक व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्ति की हिंसा समाज-धर्म-विरोधी होने के कारण पाप होगी। एक सैनिक द्वारा अनेक की हत्या समाज तथा व्यक्ति धर्म के अनुकूल होने के कारण पुण्य होगी। एक बालक का एक अंगारे को पकड़ना शरीर-धर्म-विरोधी होने से पाप-परिणत होगा।

यही एक कसौटी है जो देश-काल के बन्धन से मुक्त रह कर पाप तथा पुण्य में अन्तर स्पष्ट कर सकती है।

परवरदिगार से आरज़ू

नहीं नापाक नालायक खलक में मुझ-सा कोई और,
भरा लाखों गुनाहों से दिखाऊँ मुंह तुझे कैसे?
इबादत की नहीं तेरी भूलकर भी कभी मैंने,
सताया तेरे बन्दों को सामने आऊँ कैसे?
मुहब्बत ज़ालमों से की जोड़ इखलास पुर दिल से।
किया इखतलाफ़ नेकों से बताऊँ क्या तुझे कैसे?
डराया बेगुनाहों को औ' लूटा बेवसों को खूब,
मिटाई आब आदिल की, करूँ अब क्या कहो कैसे?
छोड़ खिदमत खुदा तेरी, करें अख्तियार बेशर्मी,
बेवफा बनकर करी चुगली, बचाऊँ अब कहो कैसे?
मिटा इन्सानियत सारी, बना खूँखार बेहद मैं
जान ली बेजुबानों की डरूँ अब मैं नहीं कैसे!
बिताई आशनाई में उम्र हो बेहया पूरा,
माँगू अब किस तरह माफ़ी, सज़ा से अब बचूँ कैसे?
रहमदिल ए मेरे मालिक, करो अब परवरिश मेरी,
छोड़ परवर के दर को मैं जाऊँ ग़ैर पै कैसे?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जगत्, जीव और ब्रह्म (२) [गताङ्क से आगे]

[सर्वतन्त्रस्वतन्त्र विद्यामार्तण्ड प्रो. माधवाचार्य]

चेतन के चैतन्य से चेतन बनने वाली एवम् अन्त में लय होने वाली प्रकृति कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकती, भले ही वह अपने दायरे में आजाद भी हो। अतः भूतों से पूर्व सांख्य प्रक्रिया तथा भूतों के परमाणुओं के बाद वैशेषिकादिकों की प्रक्रिया भी स्वतन्त्र रूप से चरितार्थ हो सकती हैं।

पुष्टाद्वैती—अविकृत परिणामवादी कहाते हैं। ब्रह्म की परिणति तो जगत् के रूप में हुई है, किन्तु इस जगत् रूप परिणाम में भी स्थित होकर ब्रह्म जैसे-का तैसा ही बना हुआ है। संसार एक भिन्न क्रियाओं के रूप में तथा जगत् एक भिन्न वस्तु के रूप में पुष्टाद्वैत में परिलसित होता है। पुष्टाद्वैती जनों का ही दूसरा नाम शुद्धाद्वैती है। ये जगत् और संसार को भिन्न-भिन्न मानते हैं। जगत् वस्तु तथा उत्पाद व्यय आदि उसकी क्रियाएँ संसार है।

भेदाभेदवादी–निम्बार्काचार्य्य भी परिणामवाद की ओर ही झुके हैं। उनके यहां सांप की कुण्डली के साथ परिणाम और सीधे सांप के साथ शुद्ध की तुलना की गई है। दोनों अवस्थाओं में सांप, सांप ही रहता है उसमें कोई अंतर नहीं आता। भेद और अभेद दोनों ही हो जाते हैं।

विशिष्टाद्वैती—ये भी परिणामवादी हैं, किन्तु इनका परिणामवाद पुष्टाद्वैतियों के परिणामवाद से भिन्न हैं। ब्रह्म के चित् और अचित् शेष हैं। सूक्ष्म चित् अचित् स्थूल चित् और अचित् के प्रति कारण होते हैं।

मिट्टी से घड़ा बनाती बार मिट्टी को गीली करके फिर पिण्ड के रूप में करते हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म चित् और अचित् से स्थूल चित् अचित् होते हैं। यह काम भी ब्रह्म का होता है। आनन्दवल्ली के 'असद्वा इदमग्र आसीत्' इस वाक्य का रंगरामानुज ने यह अर्थ किया है कि—यह स्थूल चेतन अचेतन ब्रह्म शरीर, सृष्टि से पहले अनभिव्यक्त रूप वाला था। नाम-रूप पीछे हुए। अचिद् अंश भोग्य होने के लिये स्वरूप से विकृत होता है तथा चिद् अंश भोक्ता होने के लिये ज्ञान के संकोच और विकासों से विकृत हो जाता है।

बुद्धदेव के यहां वाह्यजगत् का असत्त्व स्वीकार करते हुए भी मानसिक मानते हैं। इस बात को योगभाष्य के चौथे अध्याय में भी कहा गया है। जगत् जब सामने आता है तो सभी के यहां एक रूप से हो आता है। व्यवहार में कोई अन्तर नहीं होता। समझने में भले ही अन्तर कर लिया जाए। हाथी देख कर आचार्य भगे अवश्य, भले ही फिर दोनों को ही झूठे कह दिया हो। जगत् के विषय के सभी मतों को सामने रख कर देखता हूँ तो यही प्रतीत होता है कि—'संसारियों के लिए संसार सर्वथा ध्रुव वस्तु है।' जब तक वे संसार में हैं एवं जब तक संसार का होश बाकी है संसार रहता ही है कभी नहीं मिटता, पर जब एक ऐसी दशा हो जाती है जिसमें अपना कोई अनुसन्धान नहीं रहता तो फिर उसके आगे संसार भी नहीं रहता। उसे इसकी आवश्यकता भी नहीं है। संसार को चाहे माया और अविद्या से बना हुआ कहें, पर यह सर्वत्र सर्वथा प्राकृतिक ही रहता है, और कुछ नहीं होता। है क्षण-क्षण में बदलने वाला परिणामी और विनाशशील, यह है अवश्य, नहीं है यह नहीं कह सकते। त्याग की उत्तम भावनाओं का इन व्यवहारों पर अच्छा असर पड़ता है। भले ही हम इसका प्रतिसंख्या निरोध ही क्यों न कर लें। फिर भी मोक्ष से पहले हम प्रत्येक स्थिति में संसार में ही रहते हैं, और रहेंगे भी संसार में ही। शरीर भी संसार का ही एक रूप है।

श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में यातना तनु का अन्त, विरजा में स्नान करने के बाद होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विरजा से पहले नहीं होता। जीवन्मुक्त भी संसार में ही रहते हैं। ज्ञान के बाद भी द्विचन्द्र दर्शन के चमत्कार के समान, संस्कारवश, प्रारब्ध भोग के अनुसार भोक्ता और भोग्य बुद्धि बनी ही रहती है।

जीव—इस शब्द का यौगिक अर्थ, जीवन-दायिनी शक्ति है। यह शरीर जीव के योग से ही जीवित है। इसके छोड़ते ही शरीर सम्बन्धियों के भी छूने योग्य नहीं रह जाता। यहीं तक आना और जाना है, फिर न तो आना बनता है और न जाना ही बन पाता है।

किसी उर्दू के कवि ने कहा है कि—

'यहीं तक आमदोशुद हैं,
नफ़स की आमदोशुद पर।'
यहीं तक आना जाना है,
न फिर आना न फिर जाना।'

जब तक शरीर में जीव है श्वास चल रहा है। शरीर के व्यवहार प्रवृत्त होते रहते हैं। जब जीव शरीर को छोड़ देता है तो फिर शरीर की सारी शोभा और क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं। इस कारण शरीरों में भी जीवों की ही प्रधानता है। जीव के बिना शरीर एक मिट्टी का ढेर है।

जीव की प्रत्यभिज्ञा—अहम्-अहम्— मैं-मैं है। इसका 'मैं-मैं का अनुसन्धान कभी समाप्त नहीं होता। सोते-जागते, उठते-बैठते सभी हालतों में इसे मैं-मैं का ध्यान सदा ही बना रहता है। यही एक ऐसी बात है जो जीव की ओर लक्ष्य कराती है। यह मानवों में ही नहीं, अपितु जीवमात्र में पाई जाती है। पशुओं की घोर निद्रा में भी उनके मुख से यही शब्द निकला करता है। वह सूं-सूं नहीं— 'सोहम्-सोहम् है।

आचार्य शंकर ने इसी बात को अपने लक्ष्य में लेकर कह दिया है कि—

'न तावदयमेकान्तेन अविषयः, अस्मत्प्रत्ययगोचरत्वात्।'

'मैं-मैं' इस वृत्ति के ज्ञान का विषय आत्मा है। अतः नितान्त ऐसी बात नहीं है कि यह आत्मा किसी ... अविषय होते हुए भी इस ... तो विषय होता ही है।

मैं तो यहां तक समझ रहा हूँ कि उक्त आचार्य के विचारों में यह वस्तु भाष्य के प्रारम्भ करने से भी पहले थी, यही कारण है कि—उक्त आचार्य ने अपने भाष्य की भूमिका में— 'युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोः' इन शब्दों से इसी वस्तु को दिखाया है कि—अस्मत् प्रत्यय का गोचर-विषय आत्मा है, इसमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं है।

दूसरे शब्दों में कहूँ तो यह भी कह सकता हूँ कि—'मैं-मैं' यह एक ऐसी वस्तु है जो जीव तक का स्पर्श कर जाती है। यही अध्यात्म की ओर खींचने की पहली सीढी है। उक्त आचार्य ने इसका उचित एवं सच्चा उपयोग किया है। न्याय ने भी इसे अपनाया है।

इनसे पहले भगवान् बुद्ध ने भी 'अहं—मैं' को आलय विज्ञान माना था। इनके यहां अष्ट प्रहर चौंसठ घड़ी मैं-मैं की ज्योति जलती रहती है। जब तक यह ज्योति है संसारी है; इसके बुत जाने-यानी निर्वाण हो जाने पर जीव का निर्वाण या मोक्ष हो जाता है। अद्वैतदीपिका ने भी 'मैं-मैं' का उपयोग लिया है। इनका कहना है कि—

"अन्तःकरणावच्छिन्नचेतनः अहंप्रत्ययविषयः"

अन्तःकरण वाच्यबुद्धि और मन आदिक उपाधि से युक्त चेतन, मैं-मैं इस वृत्ति विषयक ज्ञान का विषय होता है। इसका तात्पर्य यह होता है कि—'मैं-मैं यह जीव का अपना अनु-सन्धान है।'

शंकराचार्य्य जी महाराज—अन्तःकरणा-वच्छिन्न चेतन को ही जीव मानते हैं। चेतन का अन्तःकरण से सम्बन्ध आया बस यही उसमें जीवता आयी। वास्तव में जीव परमात्मा से भिन्न नहीं है। २-३-१८ के भाष्य में कहा है कि—

परमेव ब्रह्म, अविकृतम्, उपाधिसम्पर्कात्, जीवभावेन अवतिष्ठते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

...बुद्धि आदि ...कारण जीव भाव से ...हो जाता है। किन्तु वास्तव में वह परमात्मा ही है।

शुद्ध चेतन के पीछे कौन-कौन-सी उपाधियां लग जाती हैं, इस प्रश्न का उत्तर भी कई सूत्रों के भाष्यों में दिया है। २-३-१९ के भाष्य में कहते हैं कि—

'बुद्ध्यादि-उपाधिधर्माध्यासनिमित्तं हि
कर्तृत्वभोक्तृत्वादिलक्षणं संसारित्वम्।'

बुद्धि आदिक उपाधियों के धर्मों में मैं-मेरी करने के कारण ही अन्तःकरण से सम्बन्धित चेतन अपने को कर्ता-भोक्ता मानने लग जाता है, यही चेतन का संसारीपन है।

अध्यास का अर्थ मान बैठना होता है। कोई-कोई इसे आदत भी मानते हैं। अन्तःकरण के सामीप्य से अन्तःकरण की बातों को अपना लेता है, इसी कारण सुखी-दुःखी बनता है।

अद्वैतदीपिका ने अन्तःकरण के प्रतिबिम्ब के समान अविद्या प्रतिबिम्ब भी ग्रहण किया है। इसका कहना है कि—

"अविद्याप्रतिबिम्बः
अन्तःकरणप्रतिबिम्बो वा जीवः"

अविद्या में पड़ा हुआ चेतन का प्रतिबिम्ब अथवा अन्तःकरण में पड़ा हुआ चेतन का प्रतिबिम्ब जीव कहाता है।

अन्तःकरण के कहने से मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सब का ग्रहण हो जाता है। यह बात हम पहले ही कह चुके हैं। अविद्या में प्रतिबिम्ब पड़ा तो यही अविद्या जीव का कारण देह बनकर व्यवहार में आई।

जीव की देह-परम्परा में प्रथम कारण लिंग तथा फिर स्थूल देह है। दीखने में अथवा अनुभव में प्रथम स्थूल फिर लिंग-देह तथा सब के अन्त में कारणदेह आता है।

वेदान्त पंचदशीकार ने भी कहा है कि—

'मलिनसत्त्वा प्रकृति जिसे अविद्या भी कह दिया करते हैं यही जीव का कारण शरीर है, क्योंकि इसी में पड़े हुए चेतन के प्रतिबिम्ब को जीव कहा करते हैं। इसका फिर अन्तःकरण के साथ सम्बन्ध होने से यह मैं-मेरी करना प्रारम्भ कर देता हैं।

व्यास जी ने भी अपने वेदान्त ब्रह्मसूत्र में इसी कारण—'आभास एव सः' सूत्र (२,३,५०) किया है। इसका विवरण करते हुए आचार्य श्री शंकर ने कहा है कि—

"आभास एव च जीवः परस्य आत्मनः,
जलसूर्यकादिवत् प्रतिपत्तव्यः।"

जिस प्रकार दूरस्थ सूर्य का प्रतिबिम्ब पानी में पड़ता है उसी प्रकार निर्लेप चेतन का प्रतिबिम्ब अविद्या में पड़ता है यही जीव कहलाता है। इस प्रकार जीव परमात्मा का प्रतिबिम्ब ही है। इसी से अविद्या और बुद्धि में चमक आ जाती है। इसी कारण वेदान्त पंचदशी ने जीव बताते हुए कहा है कि—

'चैतन्यं यदधिष्ठानं
लिङ्गदेहश्च यः पुनः।
चिच्छाया लिङ्गदेहस्था,
तत्संघो जीव उच्यते।'

लिंगदेह की कल्पना का आधारभूत चैतन्य: उसमें प्रकल्पित किया लिंगदेह और लिंगदेह में रहने वाली चिच्छाया या चिदाभास इन तीनों के समूह का नाम जीव है। इस प्रकार लिंगदेह भी उपचार से जीव कोटि में आ जाता है।

इस मत में वास्तविक रूप से जीव नहीं है, ईश का आभासमात्र है। सूत्र २-३-३० के भाष्य में भी यही कहते हैं कि—

'परमार्थतस्तु न जीवो नाम, बुद्धि-उपाधि-
सम्बन्ध-परिकल्पित-स्वरूप-व्यतिरेकेण अस्ति।'

यदि बुद्धिरूप उपाधि के कारण परिकल्पित हुए स्वरूप को छोड़ दें तो जीव नामक कोई वस्तु न रह जाय। इसी ने चैतन्य को जीव बना रखा है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किसी अद्वैती सन्त ने कहा है कि—

'सच्चा सतगुरु मिला तो चेला,
पलट के कीड़े से भृङ्ग होकर।
समाया अपने में आप फिर मैं,
मिसाले जल की तरंग होकर ॥'

हे शिष्य, जब मुझे सच्चे गुरु मिल गये तो मैं उनकी कृपा से इस तरह बदल गया जिस प्रकार भौंरे के संग से कीड़ा बदल जाता है। फिर पानी की तरंग जैसे पानी में समा जाती है उसी तरह मैं अपने में आप ही समा गया। तरंग के समान प्रकाश मानने वाले भी दार्शनिक हैं। मुसलमान खुदा का नूर कहा ही करते हैं। इसी प्रकार अन्यवादी भी हैं।

जब एवं जहां उपाधि का विलय होता है वही घटाकाश महाकाश के समान वहीं लय हो जाता है। लोकान्तर में जाना नहीं पड़ता। यह शांकर सम्प्रदाय का मोक्ष है। जीव ब्रह्म का भेद मानने पर यह नहीं घट सकता। फिर भी जब तक मोक्ष नहीं होता इनके यहां भी जीव और ब्रह्म दोनों भिन्न-भिन्न ही रहते हैं। इस कारण व्यवहार दशा में इस अभेदवाद का भी कोई असर नहीं होता। व्यवहार में द्वैत ही बना रहता है। समाधि में होने वाले अद्वैत का व्यवहार में कोई असर नहीं होता। इसी कारण किसी कवि ने कहा है कि—

'हूँ द्वैत में मैं अद्वैत कहां, मिल जा अद्वैत बना ले तू।
ना द्वैत ही ना अद्वैत ही है, दोनों का तार तुही देखा ॥'

समाधि, सुषुप्ति और मूर्च्छा का इसी लिए महत्त्व है कि—'इनमें पूर्ण या आंशिक संयोग अवश्य हो जाता है।'

सुषुप्ति में तम के साथ तथा समाधि में सत्त्व पूर्वक मिलन या एकता होती है। द्वैतवादी माध्व—जीव को चिदात्मा और मिश्र मानते हैं। ये वेदान्त ब्रह्मसूत्र २-३-३० में कहते हैं कि—

'भिन्ना जीवाः परो भिन्नः,
तथापि ज्ञानरूपतः।
प्रोच्य...
वेदवाक्येषु

जीव और ब्रह्म दोनों सदा जुदे-जुदे हैं तो भी जीव ज्ञानरूपो हैं इस कारण वेदवाक्यों में ब्रह्मरूप से भी कह दिये हैं। क्योंकि 'ज्ञानानन्दादिब्रह्मगुणा एव अस्य' ज्ञान आनन्द आदिक ब्रह्म के गुण ही जीव के भी गुण हैं।

निम्बार्काचार्य—जीव को ज्ञानस्वरूप और ज्ञातृत्ववान् स्वीकार करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जीव ज्ञानघन होते हुए भी ज्ञाता है, इस कारण उसमें ज्ञातता भी रहा करती है।

रामानुजाचार्य—चेतन ज्ञातृत्ववान् और सर्वैकशेषी सर्वेश का शेष मानते हैं। 'मैं जानता हूँ' यह अनुभव चेतनों की ज्ञातता को सिद्ध करता है। शेष का अर्थ 'अंश' होता है। चेतन और अचेतन अंश या शरीर भी सर्वेश होते हैं। इनसे विशिष्ट एक हैं। इनके भेद को लेकर यहां चेतन-अचेतन और आनन्दमय सर्वेश ये तीन तत्त्व हो जाते हैं।

रामानन्दाचार्य—नारायण के स्थान में भगवान् राम को ब्रह्म मानते हैं। यही दोनों का मौलिक अन्तर है। अवशेष मान्यताएँ दोनों में एक-सी ही हैं।

जीव का परिमाण—सभी वेदान्तियों ने 'अणु' माना है। श्रुतियों ने भी इसे अणु ही बताया है। बालाग्र के सौवें भाग का भी सौवां भाग बताना जीव के अणुपन की ओर ही लक्ष्य करता है।

माध्व ने भी २-३-२३ में कह दिया है कि—

'अणुमात्रोऽप्ययं जीवः,
स्वदेहं व्याप्य तिष्ठति।
यथा व्याप्य शरीराणि,
हरिचन्दनविप्रुषः ।'

भले ही जीव अणुमात्र है, फिर भी हरिचन्दन की बूंदों के समान सारे शरीर में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

…व की यह …गई है।

जैन—मध्यम परिमाण मानते हैं। जीव हाथी के शरीर में हाथी जितना बड़ा एवं चींटी के शरीर में चींटी के शरीर जितना छोटा होकर बैठता है। इस प्रकार के परिमाण को मध्यम परिमाण कहते हैं।

नैयायिक-वैशेषिक—जीव का परम महत्परिमाण मानते हैं। इनका कहना है कि सर्वेश के समान जीव भी विभु आकाश के समान सर्वव्यापक है।

अणु, मध्यम या महान् हो व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आता। क्योंकि अणु को ज्ञान की व्याप्ति से निर्वाह करना पड़ता है। महान् स्वयं ही सर्वत्र व्याप्त हैं। रही मध्यम की बात अनन्त-वीर्य और अनन्तज्ञान वाला जीव हर स्थिति में हाथी और चींटी के शरीर को सम्भाल सकता है।

जीव नित्य है। उपाधि की अपेक्षा से उनकी उत्पत्ति कही जाती है। वास्तव में जीव इनसे रहित हैं।

(क्रमशः)

उपालम्भ

—श्री ब्रह्मस्वरूप

फूल का हवा से—

प्रातःकाल का समय था, धीमी पुरवैया के सुहावने झोंके और वैशाख का महीना। खिले-खिले हुए गुलाब के एक झाड़ पर बैठ कर बुलबुल ने एक राग गाया, और हवा के झोकों से हिलते हुए फूल को देखकर सोचा, यह फूल शायद मेरे गाने की दाद दे रहा है। बुलबुल ने अहंकार से सर को ऊँचा किया, फुदक कर दूसरी टहनी पर जा बैठी, और कहा—"फूल! मेरे राग ने तेरी पंखड़ियों में रंग और पराग में खुशबू भरी है, याद रख तू मेरा ऋणी है।"

बुलबुल अपनी बात कह कर ज्यों ही शाँत हुई, पास ही उगी हुई कटीली झाड़ी के पौधे ने अंगड़ाई ली और बुलबुल से कहा—"मैं भी सदा के लिए तेरा ऋणी बनना चाहता हूँ, यदि मेरे पत्तों पर भी, तू अपने राग की करामात से यह गुलाबी रंगत और भीनी खुशबू बखेर सके।

झाड़ी की बात सुन कर बुलबुल ने तमक कर आकाश की उड़ान ली और झोंके की चंचलता ने नीरवता। झाड़ी ने गुलाब की तरफ़ मुंह फेरा और कहा—"पड़ोसी संसार की हर इकाई अपने ही वैभव से चमकती और चहकती है।

देवालय : सॉनेट

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मन्दिर के इस कोने में तुम, सन्ध्या-वन्दन क्यों करते हो
मत फेरो माला के मनके, पूजन-अर्चन क्यों करते हो,
जिसको खोज रहे हो तुम रे, द्वार बन्द कर अंधियारे में
वह ईश्वर तो सम्मुख ही है, नयन मूंद कर क्या करते हो।

जहाँ कृषक अपने श्रम-बल से, भूमि खोद कर फसल उगाता
और जहाँ छेनी से पत्थर फोड़ श्रमिक है राह बनाता,
देव तुम्हारा वहीं मिलेगा, धूलि-भरे कपड़ों को पहने
धूप और वर्षा को सहता, श्रमजीवी बन रक्त बहाता।

अगर तुम्हें उससे मिलना है, तो सुन्दर परिधान छोड़ दो
कर्मशील बन रहो धरा पर, भजन-तपस्या-ध्यान छोड़ दो,
अरे मुक्ति क्या, मोक्ष कहाँ है, कैसे उसको पाएँ हम
जन्म-मरण से बँधा स्वयं प्रभु, मुक्ति का स्तुति-गान छोड़ दो।

खोलो अपनी यह समाधि तुम, रहने दो अगरु और सुमन,
भेंट तुम्हारी होगी प्रभु से, क्यों न फटे हों फिर ये वसन।

अनुवादक—श्री ध्रुव कपूर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देव-भाषा—

संस्कृत-जगत्

पुराण-रत्नानि

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम् ।
समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
तां तृष्णां संत्यजेत् प्राज्ञः सुखेनैवाभिपूर्यते ॥ (ब्रह्मपुराणम् १२।४२-४३)

तापत्रयेणाभिहतं यदेतदखिलं जगत् ।
तदा शोच्येषु भूतेषु द्वेषः प्राज्ञः करोति कः ॥

अथ भद्राणि भूतानि हीनशक्तिरहं परम् ।
मुदं तदापि कुर्वीत हानिर्द्वेषफलं यतः ॥ (विष्णु पु० १।१७।८०-८१)

योगो हि दुर्लभो नित्यम् अल्पप्रज्ञैः कदाचन ।
लब्ध्वाऽपि नाशयन्त्येनं व्यसनैः कटुतामिताः ॥ (हरिवंश पु० १६।१०)

शरणागतः क्षुधार्तश्च शत्रुभिश्चाप्युपद्रुतः ।
चिरोषितश्च स्वगृहे पातव्यः सर्वदा भवेत् ॥ (२०।११)

कुमित्रं च कुदेशं च कुराजानं कुसौहृदम् ।
कुपुत्रं च कुभार्यां च दूरतः परिवर्जयेत् ॥ (२०।११६)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

... यः करोति नराधमः ।
अनाथो दुर्बलो यद्वन्न चिरं स तु जीवति ॥ (२०।१२२)

निधाय मनसा वैरं प्रियं वक्तीह यो नरः ।
उपसर्पेन्न तं प्राज्ञः कुरङ्ग इव लुब्धकम् ॥ (२०।१३४)

अमित्रादुन्नतिं प्राप्तो नोन्नतोऽस्मीति विश्वसेत् ।
तस्मात् प्राप्योन्नतिं नश्येत् प्रावार इव कीटकः ॥ (२०।१३६)

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति ॥ (३०।४३)

ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः ।
ये स्थिता ब्रह्मचर्येषु ब्राह्मणास्ते दिवि स्थिताः ॥ (४५।३८)

ब्रह्मचर्यादब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते ।
एवमाहुः परे लोके ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ (४५।३७)

नास्ति योगं विना सिद्धिर्नास्ति सिद्धिं विना यशः ।
नास्ति लोके यशोमूलं ब्रह्मचर्यात् परंतपः ॥ (४५।३६)

सत्ये धर्मे च नियतान् मानवान् विगतज्वरान् ।
नाकाले धर्मिणो मृत्युः शक्नोति प्रसमीक्षितुम् ॥ (५।१४)

विद्यया यया यो युक्तस्तस्य सा दैवतं परम् ।
सैव पूज्याऽर्चनीया च सैव तस्योपकारिणी ॥ (१६।४)

न चात्मनो गुणांस्तात प्रवदन्ति मनीषिणः ।
परेणोक्ता गुणा गौरवं यान्ति वेदार्थसंमिताः ॥ (२३।८)

नाऽकाले म्रियते कश्चित् प्राप्ते काले न जीवति ।
एवं विनिश्चयं कृत्वा न कुर्यात् कस्यचिद्भयम् ॥ (४६।३४)

गृहस्थ एव धर्मात्मा गृहस्थो धर्मवित्तमः ।
गृहस्थो धर्मरूपस्तु गृहस्थो वर्ण एव च ॥ (१०७।२२)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राचीन-भारत-गौरवम्

[श्री वासुदेव द्विवेदी वेदशास्त्री साहित्याचार्य]

पुरुषा इहैव भारते विज्ञानिनोऽभवन् ।
देवा इवाऽवनीतले बहुमानिनोऽभवन् ॥

तपसो बलादिहैव पुरा लब्धसिद्धयः ।
मनुजाः कदाचिदाशु वियद्गामिनोऽभवन् ॥

परमात्म-तत्त्व-चिन्तने चतुरा इहैव ते ।
गौतम-कपिल-कणाद-मुखा ज्ञानिनोऽभवन् ॥

इह भारते पुरा पितुस्तनया निदेशतः ।
सकला विहाय सम्पदो वनवासिनोऽभवन् ॥

बहवो महीभुजोऽपि हा ! चेरुर्वने-वने ।
स्वप्नेऽपि किन्तु नैव मृषावादिनोऽभवन् ॥

ज्ञातो न केन भार्गवो नो वेद को रघुम् ।
एतादृशा महीतले के दानिनोऽभवन् ॥

भुवने धनञ्जयादयो बहवो धनुर्द्धराः ।
विमलं यशः प्रसार्य धराशायिनोऽभवन् ॥

मुनयोऽवगाह्य भारतेऽखिल-वेद-वारिधिम् ।
ज्ञानाऽमृतं निपीय गताऽपायिनोऽभवन् ॥

इह जन्म लेभिरे तथा विप्रा मनीषिणः ।
येषां विदेशवासिनोऽप्यनुयायिनोऽभवन् ॥

नहि भारतस्य वर्णने शक्ता "विनीत"—वाक् ।
अमरादयोऽपि यस्य यशोगायिनोऽभवन् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

...त विद्यालय का शतप्रतिशत परिणाम

नया प्रवेश आरम्भ

ब्रह्मचर्याश्रम (डेरा) श्री अमर योगी श्री बावा रुद्रानंद जी महाराज के संस्कृत-विद्यालय की प्राज्ञ परीक्षा का परिणाम शतप्रतिशत रहा; गत वर्ष भी शतप्रतिशत ही रहा था।

- विद्यालय का नया प्रवेश आरम्भ है। शीघ्र ही प्रवेश-पत्र भेजें।
- भोजन, छात्रावास एवं क्रीडा आदि का प्रबन्ध आश्रम की ओर से निःशुल्क होगा।
- हर प्रकार की सुभीता उपलब्ध।
- निर्धन एवं असहाय विद्यार्थियों के लिए विशेष सहायता।
- क्रीडा तथा पुस्तकालय का सुचारु प्रवन्ध।
- संस्कृत के प्रेमी छात्र अतीव शीघ्रता से प्रवेश-पत्र भेजें। केवल दस (१०) छात्रों के रिक्त स्थान-पूर्ति की आवश्यकता है।

नोट—प्राइमरी पास से कम एवं १५ वर्ष की आयु से अधिक आयु के छात्र प्रवेश नहीं पा सकेंगे।

व्यवस्थापक—श्रीरुद्र संस्कृत विद्यालय ब्रह्मचर्याश्रम (डेरा) अमर योगी
१००८ श्री बावा रुद्रानंद (रुद्र) जी महाराज गांव नारी,
डा. घ. चलोला, ज़िला होशियारपुर (पंजाब)।

"दैनिक वीर प्रताप" (जालन्धर शहर)

दि० २१ मई १९६१ में प्रकाशित सम्मति—

"*विश्व साहित्य* मासिक पत्रिका विश्व में प्रकाशित साहित्य की एक झांकी है। देश-विदेश में साहित्यिक गतिविधियों व नये प्रकाशनों, संस्थाओं का परिचय इस पत्रिका में संकलित होता है। इस दृष्टि से यह पत्रिका साहित्य में रुचि रखने वालों, प्रकाशकों और लेखकों के लिए बड़ी उपयोगी है।"

विश्व साहित्य

सम्पादक— अखिल विनय, ऍम. ए.
देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर

- पंजाब और उत्तर-पश्चिमी भारत का प्रमुख मासिक
- इससे मिलेगा—विविध साहित्य की प्रगति का परिचय
- हिन्दी तथा अन्यान्य भाषाओं के प्रकाशनों की समीक्षा
- विश्व के कोने-कोने से साहित्य-साधना व सृजन के समाचार

आन्तर-भारती	*प्रकाशकीय मंच*	*लेखकों का अपना पृष्ठ*
सम्पादकीय	*विविध लेख*	*भारती-विद्या-विस्तार*

वार्षिक मूल्य फिर भी २.००; नमूने की प्रति के लिए ८ नये पैसे के टिकट आज ही भेजें।

व्यवस्थापक, **विश्व साहित्य, पो० साधु आश्रम, होशिआरपुर**

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitize... ...ngotri

"अमर विभूति" के—

उद्देश्य

१. मानव मात्र को सच्चा सुख तथा शान्ति प्राप्त करने के लिए, भौतिकवाद पर अध्यात्म की विजय का पथनिर्देश करते हुए, विविध उपाय बतलाना।

२. समस्त विश्व में पारस्परिक प्रेम, आस्तिकता, वैदिक निष्ठा एवं चरित्र-निर्माण के प्रसार-निमित्त भारतीय संस्कृति तथा उच्चादर्शों का प्रचार करना।

३. किसी सम्प्रदाय, सरकारी अथवा गैर-सरकारी दल में भाग न लेकर सर्व-जन-कल्याणकारक विचारधाराओं को निष्पक्ष रूप में समझने के लिए परामर्श तथा सहयोग देना।

४. जनता-जनार्दन के लिए वेद, उपनिषद्, पुराण, गीता आदि अमूल्य ग्रन्थों का सार सरल ढंग से प्रस्तुत करना तथा उन्हें सस्ते मूल्य पर उपलब्ध करना।

५. विश्व-कल्याण की सर्वोपरि भावना को लेकर—ब्रह्मचर्य, अहिंसा, स्वास्थ्य, देशभक्ति, ग्रामोद्धार, पारिवारिक शान्ति, सदाचार आदि सम्बन्धी शास्त्रीय टिप्पणियों, लेखों और कविताओं द्वारा जन-साधारण से सुशिक्षित समाज तक सरल भाषा में अपने विचार पहुँचाना।

इसमें पढ़िए :—

- आध्यात्मिक ज्ञानवर्धक लेख
- वेदमन्त्रों की सरल व्याख्या
- रोचक कहानियां
- ग्राम-विकास की योजनाएँ
- मनोरञ्जक एकाङ्की
- संतों के अमूल्य वचन तथा संस्मरण
- गृहस्थाश्रम के आवश्यक कार्य
- स्वास्थ्य-संरक्षण के उपाय
- विद्यार्थियों के उपयुक्त लेख
- गवेषणापूर्ण शास्त्रीय लेख
- प्रभुभक्तों के प्रश्नोत्तर
- विचारवर्धक सूक्तियाँ
- शिक्षाप्रद कविताएँ
- भारतीय संस्कृति की रूप-रेखा
- देव-भाषा संस्कृत का एक स्तम्भ
- आश्रम-समाचार
- आदि गुरुमहाराज श्री बाबा जी के उपदेश
- आश्रम का साप्ताहिक सत्संग
- वेदान्त एवं योग महिमा
- सम्पादकीय

संपादक, मालिक और प्रकाशक—ब्रह्मचारी सुग्रीवानन्द वेदान्ताचार्य, शास्त्री, प्रभाकर, विद्यालङ्कार
आचार्य—ब्रह्मचर्याश्रम अमर योगी बाबा रुद्रानन्द जी महाराज द्वारा
बी. बी. आर. आई. प्रेस, साधुआश्रम, होशिआरपुर में मुद्रित।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri